कामन्दकीय नीतिसार तृतीय सर्ग (आचारव्यवस्थापनप्रकरणम्) सम्पूर्ण हिन्दी व्याख्या, IAST, 40 श्लोक, नेतृत्व एवं सुशासन

(Kamandakiya Nītisara Sarga 3: Complete Hindī Meaning, IAST, 40 Shlokas, Leadership & Good Governance)



मूल ग्रन्थकार (Author): आचार्य कामन्दक (*Ācārya Kāmandaka)*

व्याख्या एवं प्रस्तुति (Commentary & Presentation*): Indian Philosophy & Ethics*

लेखक / संपादक (Author / Editor): *Anand Singh Dhami*

विषय क्षेत्र (Subject Area): भारतीय दर्शन, नीतिशास्त्र, राजधर्म ,नेतृत्व अध्ययन, सुशासन , संस्कृत साहित्य

संक्षिप्त परिचय: कामन्दकीय नीतिसार के तृतीय सर्ग *आचारव्यवस्थापनप्रकरणम्* का हिन्दी अनुवाद, IAST लिप्यन्तरण, शब्दार्थ, भावार्थ, दार्शनिक विवेचन तथा आधुनिक नेतृत्व एवं सुशासन की दृष्टि से विस्तृत विश्लेषण।

ऑनलाइन लेख: *https://indianphilosophyethics.blogspot.com/2026/07/kamandakiya-nitisara-tritiya-sarga.html*

प्रस्तावना

कामन्दकीय नीतिसार प्राचीन भारतीय अर्थशास्त्र-परम्परा का एक अप्रतिम एवं सर्वांगीण ग्रन्थ है, जो कौटिल्य की कठोर दण्ड-नीति को काव्यात्मक, नैतिक एवं मानवीय आधार प्रदान करता है। इस ग्रन्थ के **तृतीय सर्ग** का शीर्षक है – **'आचारव्यवस्थापनप्रकरणम्'**। यह शीर्षक ही संकेत करता है कि इस सर्ग में राजा अथवा शासक के **'आचार' (व्यवहार, चारित्र्य, संवाद-कौशल एवं सामाजिक नीति)** को राज्य-व्यवस्था का मूलाधार स्थापित किया गया है।

प्रस्तुत सर्ग में कामन्दक न केवल बाह्य दण्ड-व्यवस्था (शासन-बल) का विवेचन करते हैं, अपितु **आन्तरिक शील, वाक्-संयम, विनम्रता, दया एवं सामाजिक सम्बन्ध-कौशल** को समग्र राज-नीति का केन्द्र-बिन्दु बनाते हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि शासन केवल 'भय' (दण्ड) पर नहीं, अपितु 'विश्वास' एवं 'प्रेम' पर टिका होना चाहिए।

इस सर्ग का प्रारम्भ राजा के द्वैत-कर्तव्य (यमराज-तुल्य दण्डधारी एवं प्रजापति-तुल्य पालक) से होता है, जहाँ कठोरता एवं सौम्यता के संतुलन पर बल दिया गया है। तत्पश्चात्, कामन्दक 'मन्यु' (पीड़ित के क्रोध) की अत्यन्त गहन चेतावनी देते हैं – यदि राजा अपने स्वार्थ में दीन-असहायों को पीड़ा देता है, तो वही पीड़ित वर्ग उसके सिंहासन को हिला सकता है – यह क्रान्ति-दर्शन का सूक्ष्म पूर्वाभास है।

इसके बाद सर्ग का मुख्य भाग **'वाक्-शुद्धि' (वाणी का अनुशासन)** को समर्पित है, जहाँ कामन्दक ने श्लोक २१ से २७ तक अत्यन्त मार्मिकता से समझाया है कि 'मधुर वचन' ही सबसे बड़ा आभूषण और सबसे प्रभावी शासन-अस्त्र है – कठोर वाणी शस्त्रों की भाँति मर्म को काटती है, जबकि मधुर वाणी संसार को जीत लेती है। अन्तिम भाग में 'सनातन मार्ग', 'विनय', एवं 'मधुरवचन-पाश' के माध्यम से इहलोक एवं परलोक दोनों की सिद्धि का उपदेश दिया गया है।

संक्षेप में, यह सर्ग राजा, प्रबन्धक, एवं प्रत्येक नागरिक के लिए एक **सार्वभौमिक आचार-संहिता** है, जो आधुनिक लोकतन्त्र, कॉर्पोरेट संस्कृति एवं सामाजिक संचार-माध्यमों के लिए अत्यन्त प्रासंगिक सिद्धान्त प्रस्तुत करता है।

दण्ड और करुणा का संतुलन

दण्डं दण्डीव भूतेषु धारयन् धरणीपतिः ।

प्रजाः समनुगृह्णीयात् प्रजापतिर् इव स्वयम् ॥१॥

IAST

daṇḍaṃ daṇḍīva bhūteṣu dhārayan dharaṇīpatiḥ |

prajāḥ samanugṛhṇīyāt prajāpatir iva svayam ||1||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
दण्डम्	दण्ड-शक्ति / सज़ा / शासन का कठोर हथियार

दण्डीव	दण्डधारी (यमराज) के समान
भूतेषु	सभी प्राणियों / प्रजा के बीच
धारयन्	धारण करता हुआ / प्रयोग करता हुआ
धरणीपतिः	पृथ्वी का स्वामी (राजा)
प्रजाः	प्रजा / नागरिक
समनुगृह्णीयात्	भली-भाँति पालन-पोषण करे / अनुग्रहित करे / रक्षा करे
प्रजापतिः	प्रजा का पालनकर्ता (ब्रह्मा / सृष्टिकर्ता)
इव	के समान / जैसे
स्वयम्	स्वयं (अपने कर्तव्य-भाव से)

पदच्छेदः - दण्डम् + दण्डी + इव, धारयन्, धरणीपतिः, प्रजाः, समनुगृह्णीयात्, प्रजापतिः + इव, स्वयम्।

भावार्थ

इस श्लोक में राजा के दोहरे कर्तव्य का अत्यंत सूक्ष्म एवं संतुलित चित्रण किया गया है। राजा को अपनी प्रजा के बीच **दंड-शक्ति** का संचालन **यमराज** की भाँति करना चाहिए-अर्थात निष्पक्ष, अकृपण, किंतु न्यायसंगत। परन्तु यह दंड केवल दमन के लिए नहीं है, बल्कि **प्रजा के पालन-पोषण और रक्षा** के लिए है। इसलिए शासक को साथ ही **प्रजापति (ब्रह्मा)** के समान स्वयं को प्रजा के कल्याण में लगाना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि राज्य की कठोर व्यवस्था (दण्ड) और ममतामयी पालन-पोषण (अनुग्रह) दोनों एक ही सिक्के के पहलू हैं। केवल दंड देने वाला राजा अत्याचारी बन जाता है, और केवल अनुग्रह करने वाला राजा शिथिल एवं अराजकता को आमंत्रित करता है। इसलिए शासक का प्रमुख गुण है-**संतुलन**। वह दण्ड का प्रयोग भूतों (प्राणियों) पर रखता हुआ भी उनकी हित-साधना करे, ठीक जैसे सृष्टि का स्वामी बिना भेदभाव के सबका पोषण करता है। इस प्रकार, यह श्लोक 'आचार-व्यवस्था' के मूल में राजा के 'रक्षक एवं पालक' पक्ष को स्थापित करता है, न कि 'दमनकारी' पक्ष को।

दार्शनिक विवेचन

दार्शनिक दृष्टि से यह श्लोक **न्याय एवं करुणा के द्वंद्व** का भारतीय समाधान प्रस्तुत करता है। यहाँ 'दण्ड' केवल कोई सामान्य सज़ा नहीं, वरन् **मानव-व्यवहार का नियामक सिद्धान्त** (Regulative Principle) है। इसकी तुलना 'यम' (धर्मराज) से करना अत्यंत गूढ़ है-यम कर्मों का लेखा-जोखा लेते हैं, कोई पक्षपात नहीं करते। इसी प्रकार राजा-दण्ड भी राग-द्वेष से रहित होकर केवल धर्म-आधारित होना चाहिए।

साथ ही, 'प्रजापति' की उपमा इस दण्ड-व्यवस्था को **सृजनात्मक (Creative)** बना देती है। पश्चिमी दार्शनिक हॉब्स का 'लेवियाथन' (जहाँ राज्य केवल भय का कारक है) यहाँ निष्फल हो जाता है; बल्कि यह प्लेटो के 'दार्शनिक राजा' के समीप है, जहाँ ज्ञान एवं न्याय का उद्देश्य सामूहिक कल्याण है। यह **द्वैत-सिद्धान्त (Dialectics)** को साधता है-कठोरता (अनुशासन) और सौम्यता (अनुकम्पा) एक दूसरे के पूरक हैं।

गौतम बुद्ध के 'दण्ड-भय' और 'मैत्री' के सामंजस्य की भी यहाँ छाया दिखती है। कामन्दक कहते हैं कि राजा का वास्तविक दर्शन 'राजर्षि' (राजा-ऋषि) है, जो यम-नियमों (दण्ड) के पालन के साथ-साथ ब्रह्म-भाव (अनुग्रह) से प्रजा का उद्धार करता है। यह दर्शन बताता है कि शासन का अंतिम सत्य **धर्म** है, न कि मात्र बल या केवल करुणा-दोनों का सम्मिलित रूप ही 'आचार-व्यवस्था' है।

आधुनिक संदर्भ

आज के लोकतांत्रिक और कल्याणकारी राज्यों के संदर्भ में यह श्लोक अत्यधिक प्रासंगिक है। आधुनिक सरकार के दो स्तम्भ हैं-**न्यायपालिका एवं पुलिस व्यवस्था** (दण्ड) तथा **सामाजिक-आर्थिक कल्याण योजनाएँ** (अनुग्रह/पोषण)। यदि कोई सरकार अत्यधिक कठोर कानून (जैसे मार्शल ला) लागू करती है, तो वह 'यम' तो बन जाती है, पर 'प्रजापति' नहीं; परिणामस्वरूप जन-असंतोष बढ़ता है। वहीं, यदि वह अपराधियों के प्रति अत्यधिक उदार होती है या कानून को शिथिल करती है, तो अराजकता और असुरक्षा बढ़ती है।

आपातकाल (जैसे कोविड-१९) में सरकारों ने 'दण्ड' (लॉकडाउन, जुर्माना) और 'अनुग्रह' (मुफ्त राशन, टीकाकरण) का जो संतुलन साधा, वही इस श्लोक का आधुनिक रूप है। इसके अलावा, **सतत विकास लक्ष्य (SDGs)** में 'कोई पीछे न छूटे' (Leave No One Behind) का भाव इसी 'समनुग्रह' का विस्तार है। आज के शासक को नागरिक अधिकारों (Civil Rights) की रक्षा के लिए नियमों का कठोरता से पालन करना चाहिए (यम-भाव), परंतु गरीब, वंचित और अल्पसंख्यकों के उत्थान के लिए सृजनशील नीतियाँ बनानी चाहिए (प्रजापति-भाव)। यही **सुशासन (Good Governance)** की कसौटी है-जो दण्ड को जन-हित का साधन माने, अंतिम लक्ष्य नहीं।

वाक् सूनृता दया दानं दीनोपगतरक्षणम् ।

इति सङ्गः सतां साधु हितं सत्पुरुषव्रतम् ॥२॥

IAST

vāk sūnṛtā dayā dānaṃ dīnopagatarakṣaṇam |

iti saṅgaḥ satāṃ sādhu hitaṃ satpuruṣavratam ||2||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
वाक्	वाणी / बोली
सूनृता	सत्यपूर्ण तथा मधुर (सुन्दर एवं सत्य)
दया	करुणा / सब प्राणियों के प्रति अनुकम्पा
दानम्	उचित पात्र को परोपकारार्थ वितरण / त्याग

दीनोपगतरक्षणम्	दीन (शोचनीय / पीड़ित) + उपगत (शरण में आए हुए) + रक्षणम् (रक्षा करना) - अर्थात शरणागत दुःखियों की रक्षा
इति	इस प्रकार / ये
सङ्गः	(यहाँ) संग्रह / समूह / विशेषतः सज्जनों का **स्वाभाविक लक्षण या मिलन-बिन्दु**
सताम्	सज्जन / महापुरुष / श्रेष्ठ जन
साधु	निश्चय ही / उत्तम रूप से / सुष्ठु
हितम्	कल्याण / परहित
सत्पुरुषव्रतम्	सत्पुरुषों का व्रत (आजीवन निष्ठापूर्वक पालनीय धर्म / कर्तव्य)

भावार्थ

इस श्लोक में उन चार आधारभूत सद्गुणों की संगति बताई गई है, जो किसी भी सज्जन शासक अथवा उत्तम व्यक्ति के व्यक्तित्व का मूल-स्वरूप हैं - **(१) मधुर सत्य वाणी** (जो कठोर तो न हो, पर सत्य से विमुख भी न हो), **(२) सर्वभूत करुणा** (दया जो धर्म का प्राण है), **(३) यथायोग्य दान** (केवल धन-वितरण नहीं, अपितु वस्तु, ज्ञान एवं आशीर्वाद का उचित पात्रों में विसर्जन), और **(४) शरणागत दीन-दुखियों की अकारण रक्षा** (बिना छल-कपट के संकटग्रस्त का उद्धार)।

कामन्दक कहते हैं कि इन चार गुणों का जो समुच्चय (सङ्गः) है, वही **सज्जनों की पहचान** है, वही **समाज का सच्चा हित** है, और वही **सत्पुरुषों का आजीवन पालनीय व्रत** है। यह केवल कर्तव्य-सूची नहीं है; यह जीवन की उस परिपक्व अवस्था का द्योतक है, जहाँ बाह्य शक्ति (दण्ड) का स्थान आन्तरिक सद्गुण (शील) ले लेता है। पूर्ववर्ती श्लोक में राजा के बाह्य-शासन (दण्ड-व्यवस्था) की बात थी; इस श्लोक में उसी राजा के **अन्तरंग चारित्रिक आधार** को स्थापित किया गया है, क्योंकि बिना इन सद्गुणों के दण्ड केवल आतंक बन जाता है, न्याय नहीं।

दार्शनिक विवेचन

दार्शनिक दृष्टि से यह श्लोक **कर्म-सिद्धान्त, नैतिक सार्वभौमवाद (Ethical Universalism) और अस्तित्ववादी उत्तरदायित्व** का अद्भुत सम्मेलन है। यहाँ 'वाक्-सूनृता' (मधुर सत्य) प्लेटो के 'सत्य-बुद्धि' (Sophrosyne) से मेल खाती है, परन्तु यह कांट की 'कठोर कर्तव्य-निष्ठा' से इस मायने में आगे है कि यह सत्य को **मधुरता** (अहिंसात्मक संप्रेषण) के साथ जोड़ती है - यह भारतीय 'अहिंसा-सत्य' का अद्वैत है।

'दया' को यहाँ दान और रक्षण के साथ जोड़ा गया है, जो **आचार्य विश्वनाथ** द्वारा प्रतिपादित 'सामूहिक कल्याण' (वसुधैव कुटुम्बकम्) का बीज है। दार्शनिक रूप से 'दीनोपगतरक्षणम्' **शरणागति-सिद्धान्त** को व्यावहारिक मूर्ति देता है - यह कोई उपकार नहीं, वरन् सत्पुरुष का **अस्तित्वगत कर्तव्य (Ontological Duty)** है, क्योंकि शरणागत की रक्षा करना ही सज्जनता की कसौटी है।

इन चारों को 'व्रत' (आजीवन संकल्प) कहना स्पष्ट करता है कि ये आकस्मिक कृत्य न होकर **निरन्तर चिन्तन-जन्य आत्म-विनियमन** के फल हैं। यहाँ मीमांसा का 'अपूर्व' एवं न्याय का 'परार्थ-वाद' एकाकार हो जाते हैं। कामन्दक का अन्तर्निहित दार्शनिक क्रोड है - **शासन का आधार शील है, शील का आधार संवेदना है, और संवेदना की परिणति मोक्ष-साधन न होकर जीवन-साधना है।**

आधुनिक संदर्भ

आज के वैश्वीकृत एवं संकट-ग्रस्त युग में यह श्लोक मानवीय शासन, कॉर्पोरेट संस्कृति एवं सामाजिक न्याय के लिए अत्यंत सान्दर्भिक है -

- **वाक्-सूनृता** - आज के मीडिया, सोशल मीडिया एवं राजनीतिक भाषणों में 'पोस्ट-ट्रूथ' (उत्तर-सत्य) का युग है। 'मधुर सत्य' न तो कटु सत्य की तरह भड़काता है, न ही झूठ मीठे की तरह धोखा देता है। यह **नैतिक पत्रकारिता** और 'होमोलोक्वेन्स' (वक्ता मानव) के दायित्व का स्मरण कराता है।
- **दया** - यह आधुनिक 'कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI)' एवं 'कर्तृत्व-तंत्र' के शीतल यांत्रिकीकरण में 'भावनात्मक बुद्धि (Emotional Intelligence)' का आधार है।
- **दान** - आज का 'प्रभावी परोपकार (Effective Altruism)' केवल धन-वितरण नहीं, बल्कि बिल गेट्स एवं अमर्त्य सेन की अवधारणाओं में 'क्षमता-निर्माण' (Capacity Building) है।
- **दीन-शरणागत-रक्षण** - यह **UNHCR (शरणार्थी संरक्षण)** एवं **राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन** का आधार है। महामारी (कोविड) या युद्ध (यूक्रेन-गाजा) में किसी भी राष्ट्र का 'सत्पुरुष-व्रत' इसी पैमाने पर कसा जाता है कि उसने किस प्रकार दीन-पीड़ितों के लिए सीमाएँ, धर्म और हित-साधन को नहीं बल्कि खोला।

संक्षेप में, यह श्लोक आधुनिक सुशासन, मानवाधिकार और वैश्विक नैतिकता का वह **ट्रिपल-बॉटम-लाइन (आर्थिक, सामाजिक, नैतिक)** है, जिसके बिना कोई भी विकास मानवीय नहीं कहला सकता।

आविष्ट इव दुःखेन तद्गतेन गरीयसा ।

समन्वितः करुणया परया दीनम् उद्धरेत् ॥३॥

IAST

āviṣṭa iva duḥkhena tadgatena garīyasā |

samanvitaḥ karuṇayā parayā dīnam uddharet ||3||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
आविष्टः	व्याप्त / आच्छादित / जिसने अपने मन में पूर्णतः स्थान दे लिया हो
इव	मानो / के समान (यहाँ उपमा के बजाय भाव-तीव्रता दिखाने के लिए)

दुःखेन	पीड़ा / कष्ट / वेदना से
तद्गतेन	उस (पीड़ित प्रजा) में स्थित / उससे संबंधित
गरीयसा	अत्यंत गुरुतर / भारी / गहन
समन्वितः	सम्यक् रूप से युक्त / संपन्न
करुणया	दया / करुणा (दूसरे के दुःख को दूर करने की तीव्र इच्छा)
परया	उत्कृष्ट / परम / सर्वोच्च
दीनम्	दीन-हीन / शोषित / पीड़ित / शरणागत / असहाय
उद्धरेत्	उद्धार करे / ऊपर उठाए / दुःख-पतन से बाहर निकाले

भावार्थ

इस श्लोक में राजा के **आंतरिक मनोभाव** को प्रधानता दी गई है। शासक को ऐसा आचरण करना चाहिए मानो वह स्वयं उस भारी दुःख से ग्रस्त हो, जो उसकी प्रजा के किसी दीन-हीन प्राणी को पीड़ित कर रहा है। राजा को अपने कर्तव्य-बोध में इस दुःख को सहर्ष आत्मसात करना है और उसके साथ **परम करुणा** को मिलाकर उस असहाय व्यक्ति का सर्वांगीण उद्धार करना है।

तात्पर्य यह है कि शासन केवल व्यवस्था और दण्ड का नाम नहीं, बल्कि **संवेदना** (Empathy) का सर्वोच्च व्यावहारिक रूप है। 'आविष्ट' शब्द से स्पष्ट है कि राजा को पीड़ा से दूरी नहीं, बल्कि *तादात्म्य* (Oneness) रखना चाहिए। 'गरीयसा' (गहन दुःख) का उल्लेख बताता है कि राजा क्षुद्र या सतही दुःखों से विचलित न हो, वरन् विकटतम समस्याओं पर ध्यान दे। परन्तु यह करुणा 'केवल अनुभूति' मात्र नहीं, अपितु कर्मठ है-'उद्धरेत्' क्रिया स्पष्ट करती है कि अन्ततः राजा का वास्तविक कर्तव्य पीड़ित को पुनः सम्मानजनक, सुरक्षित और समर्थ जीवन प्रदान करना है। यह श्लोक 'सत्ता' को 'सेवा' में परिणत करने का मूल मंत्र है।

दार्शनिक विवेचन

दार्शनिक दृष्टि से यह श्लोक **'दुःख-ग्राहकता' (Receptivity to Suffering)** को राज-धर्म का प्रथम सिद्धान्त स्थापित करता है। यहाँ 'आवेश' और 'करुणा' का अनुपम समन्वय है-यह पश्चिमी दर्शन की 'पैथोस' (Pathos) की अवधारणा से गहरा है, क्योंकि यह केवल भावविह्वलता न होकर एक **ज्ञानमीमांसीय (Epistemological) स्थिति** है; राजा दुःख के माध्यम से वास्तविकता (प्रजा की स्थिति) को जानता है।

'परया करुणया' इसे उपयोगितावाद (Utilitarianism) से भी परे ले जाता है-यह करुणा 'अहिंसा' और 'दयालुता' का राजनैतिक संस्करण है, जो महायान बौद्ध परंपरा के 'बोधिसत्त्व' (जो संसार के दुःख में समान रूप से भाग लेता है) से मेल खाता है। भारतीय दर्शन में इसका मूल है **'आत्मवत् सर्वभूतेषु'** (सभी प्राणियों को अपने समान देखना)। शासक अपने अहं-बोध (Ego) का विसर्जन करके समष्टि चेतना में स्थित होता है, जहाँ व्यक्ति का दुःख विश्व-दुःख बन जाता है। साथ ही, 'उद्धरेत्' कर्म-प्रधानता को

दार्शनिक आधार देता है-केवल चिन्तन (ध्यान) नहीं, बल्कि *क्रियात्मक करुणा* (कर्मयोग) ही राजा के ज्ञान-योग को पूर्ण करती है।

आधुनिक संदर्भ

आज के वैश्वीकृत, डिजिटल युग में यह श्लोक **'संवेदनशील सुशासन' (Sensitive Governance)** का आधारस्तम्भ है। आधुनिक सरकारें अक्सर नीतियों, आँकड़ों (GDP, जीवन-प्रत्याशा) और कानूनी धाराओं में उलझकर प्रजा के वास्तविक मानसिक-सामाजिक दुःख को अनदेखा कर देती हैं। यह श्लोक शासक-वर्ग (सरकार, न्यायपालिका, प्रशासन) को याद दिलाता है कि **'डेटा' के पीछे 'दर्द'** छिपा होता है।

उदाहरणस्वरूप-कोविड-१९ के समय सरकारों को सिर्फ़ मृत्यु-दर नहीं देखनी थी, वरन् प्रवासी मज़दूरों की पीड़ा को 'आविष्ट' होकर समझना था, और उन्हें राहत पहुँचानी थी (दीनोद्धार)। जलवायु परिवर्तन से विस्थापित समुदाय, युद्धग्रस्त क्षेत्रों के शरणार्थी, अथवा ऑनलाइन धोखाधड़ी से पीड़ित बुज़ुर्ग-सभी के प्रति प्रशासनिक 'करुणा' आवश्यक है। 'परया करुणया' आधुनिक 'कल्याणकारी योजनाओं' (जैसे आयुष्मान भारत, उज्ज्वला, मनरेगा) को न केवल कागज़ी योजना, बल्कि **अन्तःकरण-संचालित सेवा** बनाता है। इसके अलावा, मानसिक स्वास्थ्य, बाल-विवाह जैसे मुद्दों पर नीतियाँ तब सार्थक होती हैं जब नीति-निर्माता शोषित की स्थिति को 'स्वयं पर' लेकर उसे एक नई दिशा (उद्धार) प्रदान करें। यही वास्तविक 'सर्वोच्च लोकतांत्रिक संवेदना' है।

न तेभ्योऽभ्यधिकाः सन्ति सन्तः सत्पुरुषव्रताः ।

दुःखपङ्कार्णवे मग्नं दीनम् अभ्युद्धरन्ति ये ॥४॥

IAST

na tebhyo'bhyadhikāḥ santi santaḥ satpuruṣavratāḥ |

duḥkhapaṅkārṇave magnam dīnam abhyuddharanti ye ||4||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
न	नहीं
तेभ्यः	उन (सज्जनों) से
अभ्यधिकाः	अधिक श्रेष्ठ / बढ़कर
सन्ति	होते हैं
सन्तः	सज्जन / विद्वान् / सत्पुरुष
सत्पुरुषव्रताः	जिनका जीवन-व्रत सत्पुरुषता है / जिन्होंने सज्जन-आचरण को प्रण बना लिया है

दुःखपङ्कार्णवे	दुःख-रूपी पंक (कीचड़) और अर्णव (सागर) के सम्मिलित जाल में / अत्यन्त गहन कष्ट-सागर में
मग्नम्	डूबे हुए / पूर्णतया अभिभूत
दीनम्	दीन / अशक्त / लाचार / रक्षाहीन
अभ्युद्धरन्ति	उद्धार करते हैं / ऊपर निकालते हैं / पूर्ण रक्षा करते हैं
ये	जो (सज्जन)

पदच्छेदः - न + तेभ्यः + अभ्यधिकाः + सन्ति, सन्तः + सत्पुरुषव्रताः, दुःखपङ्कार्णवे + मग्नम् + दीनम् + अभ्युद्धरन्ति + ये ॥

भावार्थ

कामन्दक इस श्लोक में मानव-जीवन के परम कर्तव्य एवं सज्जनता की वास्तविक कसौटी प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं कि इस संसार में उन सज्जन पुरुषों से बढ़कर कोई नहीं है, जिन्होंने परहित-साधन को अपना अनिवार्य 'व्रत' (प्रण) बना लिया हो। ये सत्पुरुष कभी भी अपनी उन्नति में ही लिप्त नहीं रहते, बल्कि जब वे किसी दीन, अशक्त एवं पीड़ित प्राणी को **दुःख-पंक-अर्णव** (कीचड़ एवं समुद्र के समान दुस्तर एवं भयानक कष्ट) में पूरी तरह डूबता देखते हैं, तब वे अपनी सारी सामर्थ्य, बुद्धि और संसाधन लगाकर उसे उस यातनामय स्थिति से पूर्णरूपेण उबार लेते हैं।

'अभ्युद्धरण' केवल ऊपर खींचने की क्रिया नहीं, अपितु पुनर्जीवन-दान है-उसे स्वावलम्बी, सम्मानित और सुरक्षित बनाना है। यह उद्धार बिना किसी अहं, यश या प्रत्युपकार की आशा के किया जाता है, क्योंकि यह उनका 'व्रत' है, न कि कोई लौकिक व्यापार। इस प्रकार, यह श्लोक घोषित करता है कि सच्ची महानता न तो वैभव में है, न पद में, बल्कि **विपत्ति में डूबते मानव को सहारा देने की उस अदम्य मानवीय चेतना** में है, जो समाज को अराजकता और क्रूरता से बचाकर एक सजीव स्नेह-तंत्र बनाती है।

दार्शनिक विवेचन

दार्शनिक दृष्टि से यह श्लोक **'करुणा' को 'ज्ञान' के समकक्ष** स्थापित करता है, जो भारतीय दर्शन की 'सत्व-प्रधान' चेतना का मूल स्वर है। 'सत्पुरुषव्रताः' शब्द अत्यंत गूढ़ है-'व्रत' का तात्पर्य आकस्मिक दया नहीं, बल्कि आत्मनिष्ठ, अनवरत एवं सांस्कारिक **कर्त्तव्य-बोध** (Deontological Ethics) है। यह जैन दर्शन की 'व्रत-यात्रा' एवं बौद्ध 'बोधिसत्व-आदर्श' (जो निब्बान को ठंडा रखकर संसार में पीड़ितों का उद्धार करता है) से मेल खाता है।

शंकराचार्य के अद्वैत में 'माया' के कारण जीव दुःख-सागर में डूबा है; यहाँ 'दीन' को उठाने वाला सत्पुरुष उस 'गुरु' का प्रतीक है जो अज्ञान-रूपी पंक से मुक्ति दिलाता है। वहीं, रामानुज के विशिष्टाद्वैत में ईश्वर का 'करुणा-स्वरूप' इन्हीं सत्पुरुषों के माध्यम से लोक-व्यवहार में उतरता है। नीतिशास्त्र में, यह **कान्ट के 'प्रयोजनहीन कर्तव्य' (Duty for duty's sake)** की अवधारणा को भी चुनौती देता है, क्योंकि यहाँ कर्तव्य केवल तर्क-निष्ठ न होकर **हृदय-निष्ठ** है-यह 'भावात्मक बुद्धि' (Emotional Intelligence) का

श्रेष्ठतम दार्शनिक पक्ष है। यह 'अहंकार' के विलय और 'दूसरे के दुःख' को अपना दुःख मानने की उस परम आध्यात्मिक अवस्था का नाम है, जिसे भारतीय परंपरा 'लोकसंग्रह' कहती है।

आधुनिक संदर्भ

आज के प्रतिस्पर्धी, भौतिकवादी एवं वैश्विक संकट-प्रभावित युग में यह श्लोक मानवता का एक **सामाजिक-नैतिक घोषणापत्र** है। आज 'दुःख-पंक-अर्णव' के अनेक स्वरूप हैं-भूमंडलीय गरीबी, युद्ध-विस्थापित शरणार्थी, मानसिक अवसाद, ऑनलाइन उत्पीड़न, जलवायु शोक, और महामारी-जनित आर्थिक बर्बादी। आधुनिक समाज में 'सत्पुरुष' की पहचान अब केवल व्यक्ति तक सीमित नहीं, वरन **गैर-सरकारी संगठनों, पर्यावरण कार्यकर्ताओं, समाज-सेवी संस्थाओं, और सामाजिक उद्यमियों** में भी दिखती है, जो बिना राजनीतिक स्वार्थ के दीनों का उत्थान करते हैं।

मदर टेरेसा, बाबा आम्टे, या आधुनिक डिजिटल युग के 'क्राउड-फंडिंग' अभियान (जैसे कोविड में आपसी सहायता समूह) इस भाव को मूर्त रूप देते हैं। नीति-स्तर पर, यह श्लोक **'सर्व-समावेशी विकास' (Inclusive Growth)** और **'कॉर्पोरेट सामाजिक दायित्व' (CSR)** को प्रेरित करता है। यह आज की 'सफलता की अंधी दौड़' को झकझोरता है-यह बताता है कि मनुष्य का वास्तविक मूल्य उसकी संपत्ति में नहीं, बल्कि उसकी **'संवेदनशीलता की क्षमता'** में है। जब सरकारी तंत्र शिथिल पड़ जाता है, तब यही 'सत्पुरुष-व्रती' व्यक्ति एवं संस्थाएँ समाज की 'सेफ्टी-नेट' (सुरक्षा-जाल) बनते हैं, जो मानव-सभ्यता को पशु-स्वार्थ से उठाकर करुणा के शिखर पर स्थापित करते हैं।

दयाम् आस्थाय परमां धर्माद् अविचलन् नृपः ।

पीडितानाम् अनाथानां कुर्याद् अश्रुप्रमार्जनम् ॥५॥

IAST

dayām āsthāya paramāṃ dharmād avicalan nṛpaḥ |

pīḍitānām anāthānāṃ kuryād aśrupramārjanam ||5||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
दयाम्	करुणा / कृपा / सहानुभूति
आस्थाय	अवलम्बन करके / धारण करके
परमाम्	परम / उत्कृष्ट / सर्वोच्च
धर्मात्	धर्म (कर्तव्य-न्याय-सदाचार) से
अविचलन्	विचलित न होता हुआ / स्थिर रहता हुआ
नृपः	राजा / शासक

पीडितानाम्	पीड़ितों / यातनाग्रस्तों / संकटग्रस्तों की
अनाथानाम्	बिना नाथ (रक्षक) के / जिनका कोई आश्रयदाता नहीं
कुर्यात्	करना चाहिए / प्रयत्न करे
अश्रुप्रमार्जनम्	अश्रु (आँसू) + प्रमार्जनम् (पोंछना) = शोक-पीड़ा का निवारण करना

पदच्छेदः - दयाम् + आस्थाय, परमाम्, धर्मात् + अविचलन्, नृपः, पीडितानाम्, अनाथानाम्, कुर्यात्, अश्रुप्रमार्जनम्।

भावार्थ

इस श्लोक में राजा के **हार्दिक एवं कर्तव्यनिष्ठ** स्वरूप का मार्मिक चित्रण है। राजा को अपने कर्तव्य-मार्ग (धर्म) से कभी विचलित नहीं होना चाहिए, परन्तु उस धर्म-पालन का आधार होनी चाहिए-**परम करुणा**। अर्थात, नियम और कानून का पालन यंत्रवत् एवं निष्ठुर न हो, बल्कि वह संवेदनशीलता से ओत-प्रोत हो। शासक का विशेष ध्यान उन प्राणियों पर होना चाहिए जो पीड़ित हैं और जिनका कोई अपना रक्षक (नाथ) नहीं है-जैसे अनाथ, विधवा, दुर्बल, अत्याचार-पीड़ित नागरिक।

'अश्रुप्रमार्जनम्' अत्यंत भावुक एवं प्रतीकात्मक शब्द है-यह मात्र आँसू पोंछने की क्रिया नहीं, वरन् उनके दुःख, निराशा और भय का मूलोच्छेदन करके उन्हें आत्म-गौरव एवं आशा प्रदान करना है। इस प्रकार, राजा का वास्तविक वैभव उसकी सम्पदा या सेना में नहीं, बल्कि उसकी **सक्रिय करुणा** में है। वह जनता का पिता-तुल्य है, और उसका प्रमुख धर्म है-अपनी ही प्रजा के आँसुओं को सुखाना, यह सुनिश्चित करना कि समाज का सबसे कमजोर व्यक्ति भी सुरक्षित एवं सम्मानित अनुभव करे।

दार्शनिक विवेचन

दार्शनिक दृष्टि से यह श्लोक **धर्म और करुणा के अद्वैत (Non-duality)** का अनूठा सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। प्रायः यह प्रश्न उठता है-क्या करुणा के लिए धर्म का उल्लंघन किया जा सकता है? कामन्दक स्पष्ट करते हैं कि यहाँ करुणा **धर्म का अंग** है, उसका विरोधी नहीं। 'धर्मात् अविचलन्' का अर्थ है कि न्याय, ऋण-शीलता और अनुशासन का पालन अटल रहे, परन्तु 'परमा दया' उस न्याय-प्रक्रिया को आत्मा प्रदान करती है। इसे **'सचेतन न्याय' (Humane Justice)** कह सकते हैं।

यहाँ 'अनाथ' शब्द अत्यंत गूढ़ है। भारतीय दर्शन में 'नाथ' का अर्थ स्वामी या पालक होता है; राजा को 'प्रजानाथ' कहा गया है। जिनकी कोई नाथ (देवता, माता-पिता, या पति) नहीं, उनके लिए राजा स्वयं दैवीय कर्तव्य का प्रतिनिधि बन जाता है। यह कांट के 'कर्तव्य-शास्त्र' (Deontology) से आगे बढ़कर **'चिन्तनशील कर्तव्य' (Reflective Duty)** की ओर संकेत करता है-जहाँ नियमों का पालन करते हुए भी उनके प्रभाव (प्रभाव-विज्ञान) का आकलन आवश्यक है।

गीता में श्रीकृष्ण द्वारा 'लोकसंग्रह' (लोक-कल्याण) पर बल देना और बुद्ध की 'करुणा' का आदर्श-दोनों का संगम यहाँ दिखता है। दार्शनिक मानवतावाद की दृष्टि से यह कहता है कि शासन का अंतिम लक्ष्य केवल व्यवस्था बनाए रखना नहीं, बल्कि **मानव-पीड़ा का उन्मूलन** है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक कल्याणकारी राज्य (Welfare State) का आधारस्तम्भ इसी श्लोक में निहित है। आज का 'शासक' (सरकार/प्रशासन) केवल कानून-व्यवस्था का रखवाला नहीं, बल्कि **सामाजिक न्याय और मानव-अधिकारों** का संरक्षक है। 'पीडितानाम्' अर्थात प्राकृतिक आपदाओं, युद्ध, हिंसा या आर्थिक शोषण से पीड़ित लोग; 'अनाथानाम्' अर्थात वंचित वर्ग, अनुसूचित जाति-जनजाति, अल्पसंख्यक, और असहाय वृद्ध-बच्चे-इनके प्रति राज्य का दायित्व है।

आज यह दायित्व 'अश्रुप्रमार्जन' से **'एसडीजी (SDG) लक्ष्य'** और **'सार्वभौमिक बुनियादी आय (UBI)'** के रूप में व्यक्त होता है। विकसित देशों में मानसिक स्वास्थ्य सेवाएँ, बेसहारा लोगों के लिए राहत-शिविर, और कानूनी सहायता (Legal Aid) इसी भावना के उदाहरण हैं। यह आधुनिक लोकतंत्र में **'विपक्षी दल'** और **'मीडिया'** की भूमिका को भी पुष्ट करता है, क्योंकि वे शासक को पीड़ितों की आवाज़ से अवगत कराते हैं।

सबसे महत्वपूर्ण, यह श्लोक सरकारी नौकरशाही (Bureaucracy) को पत्थरदिल बनने से रोकता है; यह सिखाता है कि नीति-निर्माण (Policy-making) में सांख्यिकी और डेटा के साथ-साथ **'मानवीय संवेदना'** का भी उतना ही स्थान होना चाहिए। आज विश्व में जब शरणार्थी संकट, बढ़ती असमानता और मानसिक अवसाद की महामारी है, यह श्लोक शासकों को याद दिलाता है-"सच्ची राजनीति वही है जो किसी के आँसू को सुखा सके।"

आनृशंस्यं परो धर्मः सर्वप्राणभृतां मतः ।

तस्माद् राजानृशंस्येन पालयेत् कृपणं जनम् ॥६॥

IAST

ānṛśaṃsyaṃ paro dharmaḥ sarvaprāṇabhṛtāṃ mataḥ |

tasmād rājānṛśaṃsyena pālayet kṛpaṇaṃ janam ||6||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
आनृशंस्यम्	निर्दयता/क्रूरता का अभाव; दया, सहृदयता, अहिंसक व्यवहार
परः	परम, सर्वोत्तम, सबसे श्रेष्ठ
धर्मः	धार्मिक कर्तव्य, नीति-सिद्धान्त, धारण करने योग्य आचरण
सर्वप्राणभृताम्	सभी प्राणधारियों (जीवित प्राणियों) के द्वारा
मतः	स्वीकृत / माना गया / सम्मत

तस्मात्	इसलिए / अतः
राजा	शासक / राज्य का स्वामी
आनृशंस्येन	दया-भाव / करुणा / अक्रूरता के साथ
पालयेत्	रक्षा करे / पालन-पोषण करे / शासन करे
कृपणम्	दीन-हीन, गरीब, पीड़ित, असहाय, असमर्थ
जनम्	लोगों / प्रजा को

पदच्छेदः - आनृशंस्यम्, परः, धर्मः, सर्व-प्राण-भृताम्, मतः । तस्मात्, राजा, आनृशंस्येन, पालयेत्, कृपणम्, जनम् ॥

भावार्थ

इस श्लोक में कामन्दक ने राजधर्म का सर्वोच्च सिद्धान्त बताया है-**करुणा (आनृशंस्य)**। वे कहते हैं कि सभी प्राणियों-चाहे वे मानव हों, पशु हों, या अन्य कोई जीव-के मत में 'अक्रूरता' (निर्दयता का अभाव) ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। यह कोई सांस्कृतिक या क्षेत्रीय मान्यता नहीं, बल्कि एक सार्वभौमिक, अंतर्निहित सत्य है जिसे सारा जगत् मानता है।

इस सार्वभौमिक सत्य से निष्कर्ष निकलता है कि राजा को अपने शासन का आधार **केवल दण्ड या कानून न बनाकर 'करुणा' को बनाना चाहिए**, विशेष रूप से 'कृपण' (दीन-हीन, गरीब, असहाय) जनों के प्रति। राज्य की सबसे बड़ी उपलब्धि यह नहीं कि वह धनी और बलवानों की रक्षा करे-क्योंकि वे तो आत्मनिर्भर हैं-बल्कि यह कि वह उन कमजोरों का बोझ उठाए जो स्वयं को संभाल नहीं सकते।

तात्पर्य यह कि शासन की कठोरता (दण्ड) गौण है, जबकि **सहृदयता (करुणा) मुख्य धर्म** है। यदि राजा केवल नियम-कानून का पालन कराता है, पर असहाय की पीड़ा को अनदेखा करता है, तो वह धर्माचरण से भ्रष्ट हो जाता है। इसलिए राजा का प्रथम कर्तव्य है-वंचितों की सेवा में अपनी शक्ति का उपयोग करना, न कि उन पर अत्याचार या उपेक्षा करना।

दार्शनिक विवेचन

दार्शनिक दृष्टि से यह श्लोक **'शक्ति की नीति' (Realpolitik) पर 'नीतिशास्त्र' (Ethics)** की सर्वोच्चता स्थापित करता है। यहाँ 'परो धर्मः' कहकर आनृशंस्य को किसी साधारण गुण के रूप में नहीं, अपितु **सभी धर्मों का मूल-तत्त्व** घोषित किया गया है। यह उपनिषदों की 'दया ही धर्म का मूल है' की परंपरा का राजनीतिक विस्तार है।

इस विचार में **कांट का 'कर्तव्य-नैतिकता' (Deontological ethics)** और **बेंथम-मिल की 'उपयोगितावाद' (Utilitarianism)** का अद्भुत संगम है-कर्तव्य तो दया का है, और इसका लक्ष्य सर्वाधिक पीड़ितों का अधिकतम कल्याण है। परन्तु यह पाश्चात्य नैतिकता से आगे जाता है, क्योंकि यह 'सर्वप्राणभृताम्' (सभी प्राणियों) के सामूहिक विवेक को प्रमाण मानता है-यह **प्राकृतिक नैतिकता (Natural Morality)** है, जो जन्मजात एवं सहज है, न कि बाह्य आज्ञा।

यहाँ राजा को 'कृपण' की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझने का आह्वान है-जो **भारतीय अद्वैत भावना** का राजनीतिक रूप है। आनृशंस्य केवल 'न करना' (अहिंसा) नहीं, वरन् 'करना' (सक्रिय पालन) है-यह **सकारात्मक करुणा (Positive Compassion)** है। यह धर्म को व्यक्तिगत मोक्ष से निकालकर सामूहिक उत्थान के सामाजिक आयाम में स्थापित करता है, जो 'लोकसंग्रह' (जन-हित) का ही दार्शनिक आधार है।

आधुनिक संदर्भ

आज के विश्व में यह श्लोक **'कल्याणकारी राज्य' (Welfare State)** और **'सामाजिक न्याय' (Social Justice)** का सर्वोत्कृष्ट प्राचीन प्रमाण है। 'कृपण जन' (poor & helpless) आधुनिक शब्दावली में **BPL (Below Poverty Line) परिवार, अनुसूचित जातियाँ, आदिवासी, शरणार्थी, विकलांग, और कोविड-महामारी जैसी आपदाओं में पीड़ित** वर्ग हैं।

आधुनिक शासन की सार्थकता उसकी **GDP या सैन्य शक्ति** में नहीं, बल्कि **मानव विकास सूचकांक (HDI) और बहुआयामी गरीबी सूचकांक (MPI)** में मापी जाती है-जो ठीक इसी 'आनृशंस्य' को संख्यात्मक रूप देते हैं। सरकारें आज **राशन प्रणाली, आवास योजनाएँ (PMAY), सार्वजनिक वितरण प्रणाली, निःशुल्क शिक्षा-अधिकार (RTE), आयुष्मान भारत** आदि के माध्यम से इसी करुणा-धर्म का पालन करती हैं।

इससे भी आगे, यह श्लोक **'Cruelty of Indifference' (उदासीनता की क्रूरता)** पर तीखी चोट करता है-जब राज्य गरीबों की अनदेखी करता है, तो वह तकनीकी रूप से तो 'तटस्थ' होता है, पर नैतिक रूप से 'अधार्मिक' होता है। सतत विकास लक्ष्य (SDG-१ निर्धनता उन्मूलन, SDG-२ भूखमुक्ति) इसी 'पालयेत् कृपणं जनम्' की वैश्विक अभिव्यक्ति हैं। साथ ही, आधुनिक **निगमीय सामाजिक उत्तरदायित्व (CSR)** और **ESG (पर्यावरण, सामाजिक, शासन)** मानदण्ड भी यही सिद्धान्त अपनाते हैं-कि कोई भी संगठन, चाहे वह राज्य हो या उद्योग, अपने सबसे कमज़ोर हिस्सेदार की रक्षा किए बिना न तो नैतिक हो सकता है और न ही टिकाऊ।

न हि स्वसुखम् अन्विच्छन् पीडयेत् कृपणं नृपः ।

कृपणः पीड्यमानो हि मन्युना हन्ति पार्थिवम् ॥७॥

IAST

na hi svasukham anvicchan pīḍayet kṛpaṇaṃ nṛpaḥ |

kṛpaṇaḥ pīḍyamāno hi manyunā hanti pārthivam ||7||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
न	नहीं / कदापि नहीं

हि	निश्चय ही / क्योंकि
स्वसुखम्	अपना सुख / निजी स्वार्थ / आराम
अन्विच्छन्	इच्छा करता हुआ / चाहते हुए
पीडयेत्	पीड़ा दे / कष्ट पहुँचाए / अत्याचार करे
कृपणम्	दीन-हीन / निर्धन / असहाय / कमज़ोर (यहाँ 'कंजूस' नहीं, अपितु 'शक्तिहीन एवं दयनीय' अर्थ में)
नृपः	राजा / शासक
कृपणः	वही पीड़ित / दीन व्यक्ति
पीड्यमानः	पीड़ा पाता हुआ / त्रस्त किया जा रहा
हि	निश्चित रूप से (बल देने के लिए)
मन्युना	क्रोध / रोष / आवेश / उग्र प्रतिशोध-भावना
हन्ति	मार डालता है / नष्ट कर देता है
पार्थिवम्	पृथ्वीपति / राजा (पृथ्वी का स्वामी)

पदच्छेदः - न, हि, स्व-सुखम्, अन्विच्छन्, पीडयेत्, कृपणम्, नृपः । कृपणः, पीड्यमानः, हि, मन्युना, हन्ति, पार्थिवम् ॥

भावार्थ

इस श्लोक में कामन्दक राजनीति का एक अत्यंत व्यावहारिक एवं तीक्ष्ण सूत्र देते हैं-**शासक कभी भी अपने निजी सुख-भोग की लालसा में किसी दीन, निर्धन या असहाय व्यक्ति को कष्ट न दे**। ऐसा करना राजा के लिए आत्मघाती है। कारण स्पष्ट है-जब कोई अत्यंत शक्तिहीन व्यक्ति लगातार दबाव, अपमान और पीड़ा सहता है, तो उसके भीतर का 'मन्यु' (प्रचंड क्रोध) जागृत हो जाता है। यह क्रोध किसी साधारण गुस्से की तरह नहीं, बल्कि निराशा और प्रतिशोध की भयंकर ज्वाला है, जो न केवल राजा की हत्या करने की क्षमता रखती है, वरन् संपूर्ण राज्य-व्यवस्था को उखाड़ फेंक सकती है।

कामन्दक यहाँ 'मछली-न्याय' (मत्स्य-न्याय) के विपरीत संतुलन की बात करते हैं। राज्य की सारी शक्ति (दण्ड) भौतिक बल पर टिकी है, किन्तु मनुष्य की मूल प्रवृत्ति यह है कि चरम पीड़ा में वह मृत्यु से भी नहीं डरता। 'मन्यु' उस अंतिम शस्त्र के समान है, जो अति-दमन के विरुद्ध आत्मरक्षा हेतु फूटता है। अतः राजा का सबसे बड़ा कर्तव्य है-प्रजा की वेदना को पहचानना, क्योंकि **एक जलता हुआ तिनका भी पूरे वन को भस्म कर सकता है**। यह श्लोक शासक को नीति-निपुण बनने की शिक्षा देता है, न कि केवल दंड-धारी।

दार्शनिक विवेचन

दार्शनिक दृष्टि से इस श्लोक में **'शक्ति-अशक्ति का विरोधाभास' (Paradox of Power)** निहित है। यहाँ 'मन्यु' (क्रोध) को महज एक भावनात्मक विकार (जैसे पातंजल योग में 'क्लेश') न मानकर, उसे **'दमित चेतना का न्यायोचित आवेश'** माना गया है। भारतीय दर्शन के 'सत्कार्य-वाद' (अर्थात कार्य अपने कारण में विद्यमान होता है) के अनुसार, शक्तिहीन की पीड़ा में पहले से ही प्रतिरोध की संभावना (विभावना) छिपी होती है-वह अव्यक्त अग्नि के समान है।

ग्रीक दार्शनिक अरस्तू के 'कैथार्सिस' (उद्वेग-निष्कासन) से भी यहाँ तुलना होती है; किन्तु कामन्दक यह नहीं कहते कि राजा प्रजा का क्रोध निकाल दे, बल्कि वह क्रोध पैदा ही न हो, इसका उपाय करें। **मैकियावेली** के 'शेर और लोमड़ी' के सिद्धांत के विपरीत, यहाँ राजा को 'हिरण' (दीन) के प्रति संवेदनशील होना अनिवार्य बताया गया है। यह **'अहिंसा'** का राजनीतिक रूप है-जहाँ शारीरिक अहिंसा तो दूर, मानसिक/आर्थिक अत्याचार भी वर्जित है। दार्शनिक रूप से, यह कर्म-सिद्धांत को भी स्पर्श करता है-जैसी पीड़ा दी जाती है, वैसा ही दंड स्वयं को भुगतना पड़ता है, किन्तु यहाँ पारलौकिक न्याय की प्रतीक्षा न करके, सांसारिक राजा को तत्काल परिणाम (प्रतिशोध) का भय दिखाया गया है।

आधुनिक संदर्भ

आज के संदर्भ में यह श्लोक **'सामाजिक-आर्थिक असमानता' (Inequality)** और **'दमनकारी व्यवस्थाओं' (Oppressive Regimes)** के विरुद्ध एक कालजयी चेतावनी है। जब आधुनिक राज्य अपनी विकास-परियोजनाओं, कर-नीतियों, या कानूनी ढाँचे के दुरुपयोग (जैसे जमीन अधिग्रहण, मीडिया दमन, या पुलिस-अत्याचार) के कारण गरीब, आदिवासी, या अल्पसंख्यक वर्गों को लगातार पीड़ित करता है, तो वहीं से असंतोष के बीज पनपते हैं।

हमने **अरब स्प्रिंग** (ट्यूनीशिया, मिस्र), **जॉर्ज फ्लॉयड विरोध** (अमेरिका), या भारत के **किसान आंदोलन** जैसे ऐतिहासिक आन्दोलनों में देखा है कि कैसे नीचे दबे वर्गों का 'मन्यु' फूटकर सत्ता की चूलें हिला देता है। इसके अलावा, **साइबर संस्कृति** में एक वंचित नागरिक का क्रोध (हैक्टिविज्म, वायरल अभियान) शासकों के लिए अधिक खतरनाक बन गया है। आज का शासक इस श्लोक से यह सीख सकता है कि 'सबका साथ, सबका विकास' कोई नारा नहीं, अपितु अस्तित्व की मजबूरी है। न्यायपालिका, मानवाधिकार आयोग, और कल्याणकारी योजनाएँ राज्य की वह 'ढाल' हैं, जो इस 'मन्यु' को शांत करती हैं-अन्यथा आधुनिक साम्राज्य (कॉर्पोरेट सत्ता और सरकार) भी उसी मन्यु-अग्नि में जल सकता है।

को हि नाम कुले जातः सुखलेशोपलोभितः ।

अल्पसाराणि भूतानि पीडयेद् अविचारयन् ॥८॥

IAST

ko hi nāma kule jātaḥ sukhaleśopalobhitaḥ |

alpasārāṇi bhūtāni pīḍayed avicārayan ||8||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
को	कौन (नकारात्मक अर्थ में - 'क्या कोई')
हि	निश्चय ही (बल देने हेतु)
नाम	कभी / कदाचित् (आश्चर्य एवं निषेध दर्शाने हेतु)
कुले	कुल / उच्च वंश / सत्कुल / प्रतिष्ठित परिवार
जातः	उत्पन्न / जन्म लिया हुआ
सुखलेशोपलोभितः	सुख के छोटे-से कण (लेश) द्वारा लोभित / थोड़े से सुख के प्रलोभन में पड़ा हुआ
अल्पसाराणि	अल्प + साराणि - जिनका सार (बल/शक्ति/रक्षा-साधन) अत्यंत क्षीण है / दुर्बल / असहाय
भूतानि	प्राणी / जीव / नागरिक
पीडयेत्	पीड़ा / कष्ट / अत्याचार दे (विध्यपेक्षा)
अविचारयन्	बिना विचार किए / अविवेकपूर्वक / विवेक-शून्य

पदच्छेदः - को, हि, नाम, कुले, जातः, सुखलेशोपलोभितः (सुख-लेश + उपलोभितः), अल्पसाराणि, भूतानि, पीडयेत्, अविचारयन् ॥

भावार्थ

कामन्दक इस श्लोक में एक **व्यंग्यात्मक एवं अलंकारिक प्रश्न** के माध्यम से राजा की मानसिकता को कसौटी पर कसते हैं- क्या ऐसा संभव है कि कोई सत्कुलीन (वंश-परंपरा, शिष्टाचार एवं धर्म-पालन के लिए प्रसिद्ध परिवार) में जन्मा हुआ शासक, केवल **नगण्य-सा सुख** (जैसे कुछ भोग-विलास, कर-संग्रह का स्वार्थ, या दमन का अहंकार) पाने के लालच में, बिना सोचे-समझे दुर्बल एवं अल्प-साधन वाले प्राणियों को पीड़ित करे?

इसका स्पष्ट उत्तर है - 'नहीं'। यदि कोई ऐसा करता है, तो वह अपने कुल-गौरव, धर्म-प्रतिष्ठा और बुद्धिमत्ता का अपमान करता है। 'कुल' शब्द यहाँ केवल जन्म-सिद्ध अभिजात्य नहीं, अपितु **'सत्कर्म-परंपरा' और 'सदाचार'** का वाचक है। एक विवेकी शासक जानता है कि दुर्बलों का उत्पीड़न न केवल अधर्म है, वरन् राज्य की जड़ों को क्षीण करने वाला मूर्खतापूर्ण कृत्य है। स्वल्प सुख के लिए बड़े पाप का बोझ उठाना - यह पशु-प्रवृत्ति है, मानव-नीति नहीं। इस प्रकार, यह श्लोक शासक के आत्म-संयम, विवेक और दयालुता को परम कर्तव्य घोषित करता है।

दार्शनिक विवेचन

दार्शनिक दृष्टि से यह श्लोक **'नैतिक सद्गुण' (Virtue Ethics)** और **'तृष्णा-निग्रह' (Control over Desires)** के भारतीय सिद्धान्त को प्रकट करता है। यहाँ 'कुल' शब्द केवल क्षत्रिय-वंश न

होकर **'सांस्कृतिक संस्कार'** का पर्याय है। कामन्दक प्लेटो के 'दार्शनिक राजा' की भाँति मानते हैं कि शासक का जन्म (जातिगत) गौण है, अपितु उसका **'चारित्र्य-गौरव'** (Nobility of character) प्रधान है। यही कारण है कि 'अविचारयन्' (अविवेक) को सबसे बड़ा दोष बताया गया है - विवेक ही मनुष्य को पशु से अलग करता है।

पाश्चात्य दर्शन में **'नैतिक पतन' (Moral Degradation)** को सुख-लोलुपता से जोड़ा गया है - एपिक्यूरस ने भी क्षणिक सुख को त्यागने का उपदेश दिया, किन्तु यहाँ उससे भी आगे बढ़कर, क्षणिक सुख के लिए दूसरों की पीड़ा सहना **'पाप-बुद्धि'** माना गया है। गीता के 'अनुकम्पा' (दया) और 'अहिंसा' का राजनीतिक रूप यहाँ स्पष्ट है - जो शासक 'अल्पसार' (कमज़ोर) को यंत्रवत् पीड़ित करता है, वह स्वयं 'अल्पसार' (तुच्छ-आत्मा) हो जाता है। दार्शनिक रूप से, यह **'कर्म-विपाक'** का जीवंत सिद्धान्त है - परिणाम चाहे अगले जन्म में न भी हो, किन्तु इसी लोक में 'मन्यु' (क्रोध) और 'अप्रतिष्ठा' के रूप में अवश्य फलित होता है। अतः यह श्लोक **'राजर्षि' (राजा-ऋषि)** की अवधारणा को पुष्ट करता है, जो सुख-लोभ को त्यागकर लोक-कल्याण में रत रहता है।

आधुनिक संदर्भ

आज के जटिल वैश्विक परिवेश में यह श्लोक **'कॉर्पोरेट-लोभ' (Corporate reed)** और **'नौकरशाही के दुरुपयोग' (Bureaucratic Tyranny)** के विरुद्ध एक तीखी चेतावनी है। आधुनिक 'कुल' (वंश-प्रतिष्ठा) की जगह बड़ी संस्थाओं, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और सत्ताधारी वर्गों की **'ब्रांड-वैल्यू एवं नैतिक विरासत'** ने ले ली है। जब कोई निगम केवल तिमाही लाभ (Quarterly Profit) - जो 'सुखलेश' (थोड़ा-सा सुख/फायदा) है - के लिए छोटे किसानों, दिहाड़ी मजदूरों, या पर्यावरणीय पारिस्थितिकी तंत्र (जो अल्पसार हैं) का शोषण करता है, तो वही आधुनिक 'अविचारयन्' (बिना विवेक के) नीति है।

जलवायु परिवर्तन एवं **डिजिटल असमानता** इसका ज्वलंत उदाहरण हैं - विकसित देश/बड़ी टेक-कंपनियाँ थोड़े आर्थिक सुख (सस्ती ऊर्जा, अधिक डेटा माइनिंग) के लिए विकासशील देशों की दुर्बल जनता एवं संसाधनों को नष्ट कर रही हैं। इसके अलावा, **सोशल मीडिया का दुरुपयोग** - जहाँ 'भावनात्मक शोषण' करके छोटे रचनाकारों (Creators) को हाशिए पर धकेला जाता है - भी इसी श्रेणी में आता है। एक सज्जन शासक/व्यवस्थापक (जो अपने 'वैश्विक कुल' अर्थात मानवता के प्रति उत्तरदायी है) को यह चिंतन करना चाहिए कि क्या उसकी नीतियाँ दुर्बलों को पीड़ित कर रही हैं? संयुक्त राष्ट्र के **एस.डी.जी. (SDG)** का 'Leave No One Behind' सिद्धान्त इसी भाव का आधुनिक अनुवाद है। यदि शासन-व्यवस्था में 'विवेक' (नैतिकता और दूरदर्शिता) समाप्त हो गया, तो वह संगठन (चाहे वह सरकार हो या कंपनी) अपने 'कुल-गौरव' को खो बैठता है और अंततः जन-आक्रोश (जो उस 'मन्यु' का ही रूप है) से नष्ट हो जाता है।

आधिव्याधिपरीताय अद्य श्वो वा विनाशिने ।

को हि नाम शरीराय धर्मापेतं समाचरेत् ॥९॥

IAST

ādhivyādhiparītāya adya śvo vā vināśine |

ko hi nāma śarīrāya dharmāpetaṃ samācaret ||9||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
आधि-व्याधि-परीताय	मानसिक कष्टों (आधि) और शारीरिक रोगों (व्याधि) से व्याप्त / घिरे हुए
अद्य	आज
श्वः (श्वो)	कल
वा	अथवा / या तो
विनाशिने	विनाशशील / नाशवान (शरीर) के लिए
कः	कौन (व्यक्ति)
हि	निश्चय ही (बलार्थक)
नाम	सचमुच / क्या (आश्चर्य एवं निषेधार्थक)
शरीराय	शरीर के लिए / शरीर के हितार्थ
धर्मापेतम्	धर्म से रहित / अधार्मिक / अन्यायपूर्ण
समाचरेत्	भली-भाँति आचरण करे / अनुष्ठान करे

पदच्छेदः - आधि-व्याधि-परीताय, अद्य, श्वः, वा, विनाशिने, कः, हि, नाम, शरीराय, धर्म-अपेतम्, समाचरेत् ॥

भावार्थ

इस श्लोक में कामन्दक मनुष्य के **अत्यंत नश्वर एवं दुःखमय शरीर** की वास्तविकता को उजागर करते हैं। मानसिक चिंताएँ (आधि – भय, क्रोध, लोभ, मोह) और शारीरिक रोग (व्याधि – ज्वर, क्षय, आदि) इस शरीर को जन्म से लेकर मृत्यु तक निरंतर घेरे रहते हैं। इसके अतिरिक्त, इसका विनाश निश्चित है-चाहे वह आज हो, कल हो, या किसी अन्य दिन। जब यह शरीर इतनी दुर्बल, अस्थिर एवं क्षणभंगुर अवस्था में है, तब **कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति** अपने इसी नाशवान शरीर के निमित्त **धर्म-त्याग (अधर्म)** क्यों करेगा?

राजा को विशेष रूप से संबोधित यह शिक्षा बताती है कि राज्य-सुख, वैभव, भोग-विलास-ये सब इसी क्षणिक शरीर के अधीन हैं। यदि कोई शासक अपने शरीर की भूख, आराम या सत्ता-लिप्सा के लिए प्रजा पर अत्याचार करता है, मिथ्या-व्यवहार करता है, या धर्म-मार्ग को त्यागता है, तो यह अत्यंत मूर्खता है, क्योंकि वह जिस शरीर के लिए पाप कर रहा है, वही शरीर कल नष्ट हो जाएगा। अतः **धर्म ही एकमात्र शाश्वत आधार है**, जो इस अनित्य देह से परे जाकर आत्मा को सुरक्षित करता है।

दार्शनिक विवेचन

दार्शनिक दृष्टि से यह श्लोक **शांकर वेदांत के 'देहात्म-भ्रम' (Dehātma-Buddhi)** का राजनीतिक अनुप्रयोग है। शरीर को 'आत्मा' समझकर उसके हित में किया गया कोई भी कार्य, यदि वह धर्म-विरुद्ध है, तो वह अज्ञान (अविद्या) का ही परिणाम है। यहाँ कामन्दक नैयायिक एवं सांख्य दर्शन से प्रभावित हैं, क्योंकि वे 'आधि' (मानस) और 'व्याधि' (शारीरिक) को प्रकृति के विकार मानकर, उनसे पृथक् साक्षी-चेतना का संकेत देते हैं।

स्टोइक दर्शन (जैसे सेनेका) में भी यह सिखाया जाता है कि शरीर एक 'पात्र' है, जिसे आज किसी भी क्षण खोया जा सकता है, अतः मात्र उसके लिए अनैतिकता उचित नहीं। किन्तु भारतीय दृष्टि अधिक गहरी है-यहाँ **'धर्म' का वैश्विक विधान (Cosmic Law)** है। यदि शरीर नाशवान है, तो उसके पोषण के लिए किया गया अधर्म अनंत कर्म-फल को दूषित करता है। इस प्रकार, यह श्लोक **नैतिकता का तर्क-संगत (Rational) और आध्यात्मिक (Spiritual)** दोहरा आधार देता है-न तो भयवश (हेडोनिज्म) और न ही अज्ञानवश, वरन् विवेकपूर्वक धर्माचरण ही एकमात्र बौद्धिक सत्य है।

आधुनिक संदर्भ

आज के उपभोक्तावादी (Consumerist) और उपलब्धि-उन्मुख (Achievement-oriented) युग में यह श्लोक अत्यंत प्रासंगिक है। आधुनिक मनुष्य अपने शरीर की क्षणिक सुख-सुविधाओं-बेहतर घर, महँगी गाड़ी, सोशल मीडिया पर प्रतिष्ठा-के लिए अक्सर **नैतिक समझौता** कर लेता है। कॉर्पोरेट जगत में **इनसाइडर ट्रेडिंग**, **डेटा चोरी**, **पर्यावरण-दोहन**-ये सब इसी 'देह-सुख' के लिए 'धर्मापेत' आचरण के उदाहरण हैं।

सरकारी तंत्र में भ्रष्टाचार, क्लेक्स एवं जाति-धर्म के नाम पर दंगे-इन सबका मूल कारण सत्ता और शारीरिक सुविधाओं की लालसा है, जबकि यह शरीर कोविड-१९ जैसी महामारी में दिखा कि क्षण-भर में कैसे मिट सकता है। **जलवायु परिवर्तन** की समस्या भी इसी तथ्य की संतान है-आज के आराम के लिए हम कल की पीढ़ियों का अधर्म कर रहे हैं। कामन्दक की यह शिक्षा आज **'सतत विकास' (Sustainable Development)** और **'कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व' (CSR)** की दार्शनिक पृष्ठभूमि बनती है-हमें अपने क्षणिक शरीर-लाभ के लिए दीर्घकालिक धर्म (पर्यावरण, न्याय, समानता) का बलिदान नहीं करना चाहिए।

आहार्यैर् नीयमानं हि क्षणं दुःखेन हृद्यताम् ।

छायामात्रकम् एवेदं पश्येद् उदकबिन्दुवत् ॥१०॥

IAST

āhāryair nīyamānaṃ hi kṣaṇaṃ duḥkhena hṛdyatām |

chāyāmātrakam evedaṃ paśyed udakabinduvat ||10||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ

आहार्यैः	बाह्य पदार्थों / संग्रह की गई वस्तुओं / ऐश्वर्य-सामग्री द्वारा
नीयमानम्	प्राप्त किया जाने वाला / खिंचे / लाया जाने वाला (सुख)
हि	निश्चय ही (बलार्थक)
क्षणम्	क्षणमात्र / क्षणभर
दुःखेन	कष्ट / श्रम / पीड़ा के साथ
हृद्यताम्	हृदय को प्रिय लगने वाली स्थिति / आनन्द / अभिरुचि
छाया-मात्रकम्	छाया-सा (सारहीन) / केवल परछाई
एव	ही
इदम्	यह (समस्त संसार / भौतिक पदार्थ)
पश्येत्	(बुद्धिमान्) देखे / विचार करे
उदक-बिन्दु-वत्	जल की बूँद (या पानी के बुलबुले) के समान

पदच्छेदः - आहार्यैः, नीयमानम्, हि, क्षणम्, दुःखेन, हृद्यताम्, छाया-मात्रकम्, एव, इदम्, पश्येत्, उदक-बिन्दु-वत् ॥

भावार्थ

कामन्दक इस श्लोक में **भौतिक पदार्थों एवं उनसे मिलने वाले सुख की क्षणिकता** पर गहन चिंतन कराते हैं। जो मनुष्य अपने श्रम और कष्टों (दुःखेन) द्वारा संसार की विभिन्न भौतिक वस्तुओं (आहार्यैः) का संग्रह करता है, और उनसे कुछ आनन्द (हृद्यताम्) प्राप्त करता है-वह आनन्द भी बहुत **क्षणमात्र** के लिए होता है और उसे पाने में जितना दुःख झेलना पड़ता है, उससे अधिक सुख उसमें नहीं होता।

अतः किसी बुद्धिमान व्यक्ति (विशेषतः राजा) को चाहिए कि वह इस सम्पूर्ण संसार को **'छायामात्र' (मात्र एक छाया / परछाई)** और **'उदकबिन्दु' (जल-बूँद)** के सदृश देखे-जो न कि स्थिर है, न मूलभूत, और क्षणभर में सूख जाती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भौतिक संग्रहों और भोगों पर मोह करना व्यर्थ है; जिस सुख की खातिर हम अपना धर्म, कर्तव्य, और शांति गँवाते हैं, वह सुख स्वयं ही अनित्य एवं असार है।

दार्शनिक विवेचन

इस श्लोक का दार्शनिक आधार **बौद्ध धर्म के 'क्षणिकवाद' (Kṣaṇikavāda)** और **वेदांत के 'मिथ्या-त्व' (Anirvacanīya)** दोनों से संबंध रखता है, किन्तु कामन्दक का दृष्टिकोण अद्वैत-सम्मत है-संसार को 'छाया' (प्रतिबिम्ब) कहना यह द्योतित करता है कि इसका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं, यह तो चेतन-पुरुष (राजा-आत्मा) का प्रतिबिंब मात्र है।

उदकबिन्दु (जल-बूँद) की उपमा अत्यंत सटीक है-जल-बूँद गोल, चमकीली, आकर्षक दिखती है, पर ज्यों ही वह गिरती है, विलीन हो जाती है। ठीक इसी प्रकार धन, यौवन, सत्ता, और कीर्ति-सब बाहर से आकर्षक किन्तु अत्यंत नाशवान हैं। यहाँ **'वैराग्य' (Vairāgya)** की शिक्षा दी गई है, पर निष्क्रियता की नहीं, बल्कि **आसक्ति-रहित कर्तव्य-पालन** (Ishvara Pranidhana) की। यही दर्शन भगवद्गीता के 'अनित्य-असुख' प्रतिपाद्य (हे माधव, अनित्यं न हि ते सुखम्) का राज्य-व्यवस्था पर प्रयोग है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक जीवन इस श्लोक का जीता-जागता प्रमाण है। **सोशल मीडिया इन्फ्लुएंसर**, **लग्ज़री ब्रांड**, **क्रिप्टोकरेंसी**-ये सभी आधुनिक 'उदकबिन्दु' हैं, जो आज दिखते हैं और कल अदृश्य हो जाते हैं। इस श्लोक में वर्णित **'आहार्य' (संग्रह)** आज के 'हसल कल्चर' (Hustle Culture) में पूर्णतः दिखता है-लोग अपनी सेहत, परिवार और मानसिक शांति को नष्ट करके करोड़ों कमाते हैं, परन्तु वह सुख केवल कुछ महीनों की छुट्टी या नई गाड़ी तक सीमित रहता है, फिर वही खालीपन और असंतोष उत्पन्न होता है।

इसके अलावा, **'छायामात्र'** का आधुनिक रूप **'डिजिटल पहचान' (Digital Identity)** है-हमारी ऑनलाइन प्रोफाइल, फॉलोअर्स, लाइक्स-ये सब छाया हैं, जिनका कोई भौतिक आधार नहीं। यदि कोई राजनेता या उद्योगपति इस श्लोक को हृदयंगम कर ले, तो वह शॉर्ट-टर्म लाभ के चक्कर में **दीर्घकालिक नैतिक पतन (जैसे ऑक्सीडेंटल पेट्रोलियम घोटाले)** से बच सकता है। आज की **'मिनिमलिज़्म' (Minimalism)** और **'फ्रीगनिस्म'** (व्यर्थ उपभोग-विरोध) इसी प्राचीन ज्ञान के पुनरुत्थान हैं-जो सिखाते हैं कि **संतोष में ही सच्चा सुख है**, संग्रह में नहीं।

सत्संग और दुर्जन का विवेक

महावाताहतिभ्रान्तमेघमालातिपेलवैः ।

कथं नाम महात्मानो ह्रियन्ते विषयारिभिः ॥११॥

IAST

mahāvātāhatibhrāntameghamālātipelavaiḥ|
kathaṃ nāma mahātmāno hriyante viṣayāribhiḥ ||11||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
महा-वात	प्रचण्ड पवन / तूफान
आहति	आघात / प्रहार / झपट्ट
भ्रान्त	इधर-उधर भ्रमित / तितर-बितर
मेघ-माला	बादलों की पंक्ति / घटाएँ

अति-पेलवैः	अत्यन्त क्षणभंगुर / तुच्छ / निर्बल (पेलव = दुर्बल, कमज़ोर)
कथं नाम	कैसे ? / आश्चर्य है कि
महात्मानः	महान आत्मा वाले पुरुष (ज्ञानी / विवेकी)
ह्रियन्ते	आकर्षित / पराजित / बहका दिए जाते हैं
विषय-अरिभिः	विषय-रूपी शत्रुओं द्वारा (इन्द्रिय-भोग एवं सांसारिक पदार्थ)

पदच्छेदः - महा-वात-आहति-भ्रान्त-मेघ-माला-अति-पेलवैः । कथम्, नाम, महा-आत्मानः, ह्रियन्ते, विषय-अरिभिः ॥

भावार्थ

इस श्लोक में कामन्दक विषय-वासना की अत्यन्त क्षणिक एवं कृत्रिम प्रकृति को एक गहन दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं। जिस प्रकार तूफानी हवा के झोंके से आकाश में उड़ती हुई बादलों की कतार (मेघमाला) अत्यन्त पेलव (दुर्बल एवं अनित्य) होती है-वह क्षण भर में बिखर जाती है, ठीक उसी प्रकार ये सांसारिक भोग-पदार्थ (विषय) भी महज पानी के समान अस्थिर एवं नगण्य हैं।

किन्तु इसके बाद कवि एक व्यंग्यपूर्ण विस्मय (कथं नाम) प्रकट करते हैं कि फिर भी इन क्षुद्र, क्षणभंगुर विषय-रूपी शत्रुओं के द्वारा **महात्मा** (बड़े-बड़े ज्ञानी, तपस्वी एवं बुद्धिमान शासक) कैसे बहका दिए जाते हैं ? वे पुरुष जिन्होंने वेद-शास्त्रों का अध्ययन किया, जिनमें वैराग्य होना चाहिए, वे भी इन मामूली फन्दों में क्यों फँस जाते हैं ? इसका तात्पर्य यह है कि विषय वास्तव में शक्तिशाली नहीं हैं, अपितु मनुष्य की **अज्ञानता** और **असावधानी** ही उन्हें शक्तिशाली बनाती है। अतः यह श्लोक आत्म-संयम की महत्ता पर बल देता है और चेतावनी देता है कि यदि स्वयं को साधकर न रखा गया तो सबसे बड़ा पुरुष भी छोटे-से प्रलोभन में गिर जाता है।

दार्शनिक विवेचन

दार्शनिक दृष्टि से इस श्लोक में **'अध्यास' (सुपरइम्पोज़िशन)** और **'माया'** का स्पर्श है। बादल यद्यपि विशाल एवं भारी दिखते हैं, किन्तु वे वायु के एक झोंके में तितर-बितर हो जाते हैं-यह अनित्यता का बोध कराता है। यहाँ 'महात्मा' शब्द का प्रयोग अत्यन्त सार्थक है-जो आत्म-ज्ञान में स्थित है, उसके लिए विषय तो एक 'छाया' मात्र हैं, फिर भी वे ह्रियन्ते (बहक जाते हैं)। यह **'राग-द्वेष'** (काम एवं क्रोध) के उद्भव को दर्शाता है, जो पतंजलि योगसूत्र में 'क्लेश' कहलाते हैं।

सांख्य दर्शन के अनुसार, विषय तो प्रकृति के गुणों (सत्त्व, रज, तम) का विकार हैं, किन्तु पुरुष (आत्मा) तो केवल साक्षी है। फिर बुद्धि के ज्ञानी (महात्मा) का रजोगुण या तमोगुण में क्यों पतन होता है ? इसका उत्तर यह है कि **सावधानी (प्रज्ञा-जागृति)** निरन्तर न रहे तो विवेक भी ढक जाता है। यह श्लोक गीता के **'यततो ह्यपि कौन्तेय...'** (भगवद्गीता ३.३६) के विषय-संग्राम की तरह है, जहाँ काम-क्रोध ही पतन के कारण हैं। यहाँ कामन्दक ने नीति-शास्त्र को योग-दर्शन से जोड़ते हुए यह सिद्ध किया कि बाह्य पदार्थों की पेलवता को पहचानना ही सच्ची 'नीति' है।

आधुनिक संदर्भ

आज के डिजिटल एवं उपभोक्तावादी युग में यह श्लोक **'डिस्ट्रैक्शन इकोनॉमी'** (विकर्षण-अर्थव्यवस्था) पर एक तीखी टिप्पणी है। सोशल मीडिया, ओटीटी प्लेटफार्म, विज्ञापन और ग्लैमर-ये सभी आधुनिक 'विषय' हैं, जो बादलों की भाँति भव्य दिखते हैं किन्तु अति-पेलव (क्षणभंगुर) हैं। इसके बावजूद, प्रतिभाशाली वैज्ञानिक, कलाकार, खिलाड़ी और यहाँ तक कि बड़े-बड़े सीईओ भी साइबर क्राइम, फिशिंग स्कैम, अफेयर-स्कैंडल या मादक पदार्थों के फन्दे में आकर अपना सर्वस्व खो बैठते हैं।

'कथं नाम' (कैसे !) का यह विस्मय आज राष्ट्र-स्तर पर भी देखने को मिलता है-बड़ी सरकारें और बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ महज कुछ धोखाधड़ी वाली 'प्रलोभन-नीतियों' (जैसे कृत्रिम मुद्रास्फीति, फर्जी खबरें) से अस्थिर हो जाती हैं। आधुनिक मनोविज्ञान (बिहेवियरल इकोनॉमिक्स) भी कहता है कि मनुष्य का तर्कशील मस्तिष्क (नियोकोर्टेक्स) आवेगी लिम्बिक सिस्टम के सामने प्रायः हार जाता है। इस श्लोक का आधुनिक समाधान है-**'डिजिटल डिटॉक्स'**, **'माइंडफुलनेस'** और **'मीडिया साक्षरता'**; क्योंकि यदि महात्मा भी बहक सकते हैं, तो आम मनुष्य को तो सदा सावधान रहना चाहिए।

जलान्तश् चन्द्रचपलं जीवितं खलु देहिनाम् ।

तथाविधम् इति ज्ञात्वा शश्वत्कल्याणम् आचरेत् ॥१२॥

IAST

jalāntaś candracapalaṃ jīvitaṃ khalu dehinām |

tathāvidham iti jñātvā śaśvatkalyāṇam ācaret ||12||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
जल-अन्तः	जल के भीतर / पानी के अन्दर
चन्द्र-चपलम्	चन्द्रमा के समान चंचल / क्षण-भर में हिलने-डोलने वाला (प्रतिबिम्ब)
जीवितम्	जीवन / आयु
खलु	निश्चय ही / वास्तव में
देहिनाम्	शरीर धारण करने वाले (सभी प्राणियों) के लिए
तथा-विधम्	ऐसे प्रकार का (अस्थिर और अनिश्चित)
इति	इस प्रकार / यह जानकर
ज्ञात्वा	जानकर / समझकर
शश्वत्	सदा / नित्य / हमेशा के लिए (कल्याण के साथ)

कल्याणम्	शुभ कर्म / धर्म / परम-मंगल / मुक्ति-साधन
आचरेत्	आचरण करना चाहिए / पालन करना चाहिए

पदच्छेदः - जल-अन्तः, चन्द्र-चपलम्, जीवितम्, खलु, देहिनाम् । तथा-विधम्, इति, ज्ञात्वा, शश्वत्-कल्याणम्, आचरेत् ॥

भावार्थ

पिछले श्लोक में विषयों की क्षणिकता बताई गई, अब इस श्लोक में **स्वयं जीवन की क्षणिकता** का वर्णन है। कामन्दक कहते हैं-जिस प्रकार जल में पड़ा हुआ चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब अत्यन्त चंचल (चपल) है; हवा का एक झोंका, पत्थर का एक छोटा-सा कंकड़, या एक छोटी-सी लहर भी उसे तोड़-मरोड़ देती है, उसी प्रकार इस देहधारी (प्राणी) का जीवन भी अत्यन्त अनिश्चित, अनित्य और नाशवान है। इसे कोई भी क्षण समाप्त कर सकता है-रोग, दुर्घटना, प्राकृतिक आपदा, या केवल वृद्धावस्था।

इस अटल सत्य को अच्छी तरह जान लेने के बाद (तथाविधम् इति ज्ञात्वा) मनुष्य को क्या करना चाहिए ? क्या निराश होकर बैठ जाना चाहिए ? नहीं, बल्कि उसे **शश्वत्-कल्याण** (नित्य-मंगल, शाश्वत पुण्य, धार्मिक आचरण और आत्मोद्धार) का आचरण करना चाहिए। अर्थात, जब यह जीवन नश्वर है तो व्यर्थ के झगड़ों, भोग-लिप्सा और पाप-कर्मों में इसे गंवाना मूर्खता है। इस अस्थिर जीवन का सदुपयोग केवल उन सत्कर्मों में है, जो मृत्यु के बाद भी फल देते हैं (जैसे-यश, स्मृति, एवं धार्मिक-अधर्मिक लेखा)।

दार्शनिक विवेचन

यह श्लोक भारतीय दर्शन की **'अनित्यता-बुद्धि' (क्षणभंगुरता-ज्ञान)** का क्लासिक उदाहरण है। बौद्ध दर्शन में 'क्षण-विज्ञान' और अद्वैत वेदान्त में 'मिथ्यात्व' का सिद्धान्त यहाँ झलकता है-जल-चन्द्र (प्रतिबिम्ब) सत्य नहीं, दिखने में सुन्दर पर वस्तुतः असार है। ठीक यही जीवन है। यह **'मरण-स्मृति' (मृत्यु-चिन्तन)** का दार्शनिक अभ्यास है, जिसे स्टोइक दर्शन (सेनेका, मार्कस ऑरेलियस) में 'मेमेंटो मोरी' कहा गया है।

परन्तु यहाँ नैतिक निष्कर्ष यह है कि अनित्यता का ज्ञान 'शून्यवाद' (निहिलिज्म) में नहीं, बल्कि **'कल्याण-प्रवृत्ति'** में समाप्त होता है। 'शश्वत्-कल्याणम्' का अर्थ है-केवल सांसारिक धर्म नहीं, बल्कि मोक्ष-साधना या ईश्वर-प्राप्ति के साधन। यह **'निष्काम कर्म'** (भगवद्गीता २.४७) से मेल खाता है; क्योंकि जब फल की चिन्ता नहीं, तो कर्म शाश्वत कल्याण का मार्ग बन जाता है। जैसे चन्द्र-प्रतिबिम्ब (अस्थिर) जल (संसार) में दिखता है, वैसे ही आत्मा (अमर) इस शरीर (नश्वर) में प्रतीत होती है-इस परम सत्य की स्मृति ही व्यक्ति को सम्यक् आचरण की ओर अग्रसर करती है।

आधुनिक संदर्भ

आज के **अत्याधुनिक विज्ञान युग** में, जहाँ मनुष्य जीवन-विस्तार (लाइफ एक्सटेंशन), क्रायोनिक्स, और एआई के माध्यम से अमरत्व का सपना देख रहा है, यह श्लोक एक यथार्थपरक झटका है। कोविड-१९ महामारी, युद्ध (यूक्रेन-रूस, इज़राइल-हमास), जलवायु परिवर्तन के कारण आई बाढ़, भूकम्प और औद्योगिक दुर्घटनाएँ बार-बार सिद्ध करती हैं कि मानव-जीवन 'जल-चन्द्र' से अधिक स्थिर नहीं है।

यहाँ 'शश्वत-कल्याणम्' की आधुनिक अभिव्यक्ति हम **'सस्टेनेबल डेवलपमेंट'** (सतत विकास), **'सामाजिक उत्तरदायित्व' (CSR)**, एवं **'मानसिक स्वास्थ्य' (Mental Well-being)** में देख सकते हैं। अर्थशास्त्र में भी 'वेल्थ मैनेजमेंट' के बजाय 'लाइफ मैनेजमेंट' पर बल दिया जाने लगा है। आज का 'कल्याण' यह है कि हम अपनी विरासत (Legacy) को धन, शोहरत या सोशल मीडिया फॉलोअर्स में न मापें, बल्कि **इको-फ्रेंडली जीवनशैली**, **शिक्षा**, **चिकित्सा-सेवा** तथा **अगली पीढ़ी के लिए नैतिक मूल्यों** को स्थापित करने में मापें। यही एकमात्र साधन है कि हमारा यह 'चपल जीवन' अपने संक्षिप्त काल में भी 'शाश्वत' अर्थ (सार्थकता) अर्जित कर सके।

जगन् मृगतृषातुल्यं वीक्ष्येदं क्षणभङ्गुरम् ।

सुजनैः सङ्गतिं कुर्याद् धर्माय च सुखाय च ॥१३॥

IAST

jagan mṛgatṛṣātulyaṃ vīkṣyedaṃ kṣaṇabhaṅguram |

sujanaiḥ saṅgatiṃ kuryād dharmāya ca sukhāya ca ||13||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
जगत्	यह संसार / समस्त विश्व
मृगतृषातुल्यम्	मृगतृष्णा (मरीचिका/जल-भ्रम) के समान
वीक्ष्य	देखकर / विचार करके
इदम्	यह (संसार)
क्षणभङ्गुरम्	क्षण-मात्र में नष्ट होने वाला / क्षणभंगुर
सुजनैः	सज्जन / उत्तम गुणी व्यक्तियों के साथ
सङ्गतिम्	संगति / मैत्री / साहचर्य
कुर्यात्	करे / स्थापित करे
धर्माय	धर्म (सदाचार/कर्तव्य) के लिए
च	और
सुखाय	सुख (आध्यात्मिक एवं भौतिक हित) के लिए

पदच्छेदः - जगत्, मृगतृषातुल्यम्, वीक्ष्य, इदम्, क्षणभङ्गुरम्, सुजनैः, सङ्गतिम्, कुर्यात्, धर्माय, च, सुखाय, च ।

भावार्थ

कामन्दक कहते हैं कि इस संसार को मृगतृष्णा (मरीचिका) के समान तथा क्षणभंगुर (अस्थायी) देखकर बुद्धिमान व्यक्ति को सज्जनों (सुजन) की संगति करनी चाहिए। इस संगति का उद्देश्य *केवल* मोक्ष या *केवल* भोग नहीं, वरन् **'धर्म' और 'सुख'** दोनों की प्राप्ति है। अर्थात् संसार का अनित्य स्वरूप देखकर न तो विरक्त (उदासीन) हो जाना चाहिए और न ही इसे एकमात्र सत्य मानकर आसक्त हो जाना चाहिए। बुद्धिमानी का मार्ग है-'सत्संग' के द्वारा जीवन को धर्ममय एवं आनंदमय बनाना। यहाँ 'धर्म' का अर्थ सामाजिक कर्तव्य एवं नैतिक आचार है, तो 'सुख' का अर्थ मानसिक शांति एवं लौकिक समृद्धि है। इस संसार-रूपी मृगतृष्णा में प्यासा व्यक्ति (अज्ञानी) रेत ही चबाता है, किन्तु विवेकी उस मृगतृष्णा का सही उपयोग करते हुए सज्जनों के समूह-रूपी वास्तविक जलाशय में डुबकी लगाता है। अतः इस जगत् की अनित्यता को जानना ही आधार है, और सज्जन-संगति ही उसका व्यावहारिक समाधान है।

दार्शनिक विवेचन

दार्शनिक रूप से यह श्लोक **उपनिषदों के 'क्षणभंगुर'** सिद्धांत को व्यावहारिक नीति में ढालता है। गौतम बुद्ध ने 'अनित्य' (क्षणिक) का ज्ञान कराकर संसार से विरक्ति (निवृत्ति) पर बल दिया, जबकि कामन्दक यहाँ **'प्रवृत्ति' और 'निवृत्ति'** का समन्वय करते हैं-संसार को मृगतृष्णा जानते हुए भी उसमें सज्जन-संगति रूपी साधन द्वारा धर्म-अर्थ-काम (यहाँ सुख) की प्राप्ति का मार्ग बताते हैं। यह **शंकराचार्य** के 'मिथ्या-जगत्' और **रामानुजाचार्य** के 'सत्य-जगत्' के मध्य का एक व्यावहारिक सेतु है। 'सज्जन' की संकल्पना यहाँ विशुद्ध आत्मज्ञानी या सन्यासी तक सीमित नहीं, बल्कि वे लोग जो धर्म और लोक-कल्याण में रत हैं-अर्थात 'राजर्षि' या 'गृहस्थ-विद्वान'। यह **सांख्य** के 'सत्त्व-गुण' से सम्बद्ध है; सत्त्व-प्रधान व्यक्तियों की संगति ही मन के रज-तम दोषों को शांत करती है। इस प्रकार, यह श्लोक 'लोक-व्यवहार' को तिलांजलि दिए बिना, आध्यात्मिक उद्देश्य को स्थापित करता है-'सुख' यहाँ 'आनन्द' (ब्रह्मानन्द) का सोपान है, न कि केवल इन्द्रिय-सुख।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक युग, जो सोशल मीडिया, फास्ट फैशन, और अल्पकालिक रिश्तों से भरा है, स्वयं एक विशाल 'मृगतृष्णा' (मरीचिका) बन चुका है-दिखने में आकर्षक, किन्तु हाथ लगाने पर शून्य। इस अस्थिरता (क्षणभंगुरता) के बीच, यह श्लोक हमें **'नेटवर्किंग' नहीं, 'सत्संग'** की महत्ता सिखाता है। आज के कैरियर-उन्मुख मनुष्य को यहाँ यह सीख मिलती है कि केवल व्यावसायिक लाभ के लिए लोगों से जुड़ना (जैसे LinkedIn पर कनेक्शन) पर्याप्त नहीं; वास्तविक जीवन में सत्यनिष्ठ, नैतिक और सहानुभूतिपूर्ण मित्र-परिवार (सुजन) चाहिए, जो धर्म (नैतिकता) और सुख (मानसिक स्वास्थ्य) दोनों दें।

मनोविज्ञान के अनुसार, सकारात्मक सामाजिक समर्थन (Positive Social Support) तनाव (Stress) और अवसाद (Depression) से बचाता है-यही 'सुख' है। इसके अलावा, हरित-अर्थव्यवस्था या सतत विकास जैसे आधुनिक आदर्श भी इसी भाव पर आधारित हैं कि भौतिक विकास (जगत्) मृगतृष्णा है, अतः हमें सामूहिक हित (सुजन-सङ्गति) के लिए पर्यावरण-संरक्षण एवं मानवीय मूल्यों (धर्म) की ओर लौटना होगा।

सेव्यमानस् तु सुजनैर् महान् अतिविराजते ।

सुधालिप्त इव श्रीमान् प्रासादश् चन्द्ररश्मिभिः ॥१४॥

IAST

sevyamānas tu sujanair mahān ativirājate |

sudhālipta iva śrīmān prāsādaś candraraśmibhiḥ ||14||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
सेव्यमानः	सेवित / आदर-सत्कार पाता हुआ
तु	किन्तु / और (विशेषार्थक)
सुजनैः	सज्जन व्यक्तियों द्वारा
महान्	महान (प्रतापी, विद्वान, शासक)
अतिविराजते	अत्यधिक शोभा पाता है / अति-आभायुक्त होता है
सुधालिप्तः	सुधा (चूना/सफेदी / अमृत-कल्प) से लिप्त / प्लास्टर किया हुआ
इव	के समान
श्रीमान्	ऐश्वर्यशाली / शोभायुक्त
प्रासादः	राजप्रासाद / महल
चन्द्ररश्मिभिः	चन्द्र की किरणों (ज्योत्स्ना) से

पदच्छेदः - सेव्यमानः, तु, सुजनैः, महान्, अतिविराजते । सुधालिप्तः, इव, श्रीमान्, प्रासादः, चन्द्ररश्मिभिः ॥

भावार्थ

कामन्दक इस श्लोक में महापुरुषों (राजा या नेता) की शोभा का रहस्य बताते हैं। एक महान व्यक्ति, जब सज्जनों द्वारा सेवित और सम्मानित होता है, तो वह **असाधारण रूप से देदीप्यमान** हो जाता है। उपमा दी गई है-जैसे कोई भव्य महल, जो न केवल सुधा (चूने या अमृत-तुल्य सफेदी) से लिपा हो, वरन् चन्द्र-किरणों से भी आलोकित हो, तो उसकी शोभा द्विगुणित हो जाती है। इसी प्रकार, कोई राजा या विद्वान यदि अपने आप में गुणी है (महान्), तो भी उसके चारों ओर सुजनों (गुणी, सच्चे सलाहकारों) का समूह उसे और भी चमका देता है।

इसका व्यंग्यार्थ यह है कि 'महान्' व्यक्ति की वास्तविक पहचान उसके आसपास के लोगों की गुणवत्ता से होती है। केवल चाटुकारों (खुशामदियों) से घिरा शासक महल के समान तो हो सकता है, किन्तु उसमें ज्योत्स्ना (चन्द्ररश्मि) का अभाव होगा-अतः वह नीरस एवं भयभीत करने वाला बनेगा। सज्जन ही वे 'चन्द्र-किरणें' हैं, जो राजा के पद-प्रताप को कठोर (तप्त) से शीतल एवं आकर्षक बना देते हैं।

दार्शनिक विवेचन

दार्शनिक दृष्टि से यह श्लोक **'शासन-कला का सौन्दर्यशास्त्र'** प्रस्तुत करता है। यहाँ 'सुजन' केवल मंत्री नहीं, बल्कि **'आत्मीय-सत्यवक्ता'** (Critical Friend) हैं, जिन्हें प्लेटो अपने 'गार्जियन' (रक्षक) वर्ग में कहते हैं। 'महान्' (राजा) की आत्मशोभा स्वयंसिद्ध नहीं; वह 'पर-आधारित' है-यह भारतीय परम्परा का **'समवाय' (अविनाभाव)** सिद्धांत है, जहाँ कारण (सुजन) और कार्य (राज-प्रतिभा) अभिन्न हैं।

इस उपमा (प्रासाद + चन्द्रकिरण) में 'सुधा' (सफेदी) और 'रश्मि' (प्रकाश) दोनों का प्रयोग महत्वपूर्ण है-'सुधा' बाह्य आचार-संस्कार (शिष्टाचार, नीति-शास्त्र) का प्रतीक है, जो सज्जनों द्वारा प्रदान किया जाता है; जबकि 'चन्द्ररश्मि' आंतरिक सत्य एवं ज्ञान का प्रतीक है। महान् व्यक्ति दोनों से युक्त हो तो वह **'राजर्षि'** बनता है। अरस्तू के 'फ्रॉनेसिस' (व्यावहारिक बुद्धि) से भी मेल खाता है-क्योंकि सुजनों की संगति वह 'नीति-प्रज्ञा' देती है, जो बिना किसी बाह्य सत्ता के, राजा को स्वतः ही आदरणीय (श्रीमान्) बना देती है। यह मैकियावेली के 'अंध-भक्ति' के विपरीत, **'सद्गुण-आधारित कर्तृत्व'** का दर्शन है।

आधुनिक संदर्भ

आज के राजनीतिक और कॉर्पोरेट जगत में यह श्लोक अत्यंत सटीक है। कोई भी CEO, प्रधानमंत्री या निदेशक (महान्) तब तक सच्ची 'शोभा' नहीं पाता, जब तक उसकी टीम (Board, Cabinet, Advisors) सज्जनों (नैतिक, ईमानदार, निपुण) से भरी न हो। यदि कोई नेता केवल 'हाँ-में-हाँ' मिलाने वाले चापलूसों (Yes-men) से घिरा है, तो वह महल तो है, पर उस पर धूप तप रही है-लोग उससे दूर भागते हैं। इसके विपरीत, **'टीम-वर्क'** और **'डायवर्सिटी'** (विभिन्न प्रकार के सुजन) की संस्कृति उस संगठन को चाँदनी रात में सजे हुए सफेद संगमरमर के महल जैसा देदीप्यमान बना देती है।

उदाहरण के लिए, 'वैश्विक शांति सूचकांक' या 'सुशासन सूचकांक' उन्हीं देशों को ऊँचा रैंक देते हैं, जहाँ राज्य-प्रमुख के आसपास स्वतंत्र न्यायपालिका, मीडिया और नागरिक समाज (सुजन) सक्रिय हों। वहीं, स्टार्टअप संस्कृति में, एक संस्थापक के लिए 'मेंटर्स' और 'नैतिक सह-संस्थापक' की भूमिका बिल्कुल चन्द्र-किरणों के समान होती है, जो उसके व्यावसायिक भवन-रूपी प्रासाद को अमृत-कल्प (सुधा-लिप्त) बनाती है और आकर्षण का केन्द्र बनाती है।

हिमांशुमाली न तथा नोत्फुल्लकमलं सरः ।

आनन्दयति चेतांसि यथा सज्जनचेष्टितम् ॥१५॥

IAST

himāṃśumālī na tathā notphullakamalaṃ saraḥ |

ānandayati cetāṃsi yathā sajjanaceṣṭitam ||15||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
हिमांशुमाली	हिमांशु (चन्द्रमा) को अपने मुकुट/आभा में धारण करने वाला (अर्थात् चन्द्र-मण्डल युक्त आकाश / यहाँ 'चन्द्रमा' स्वयं)
न	नहीं
तथा	उस प्रकार / इतना
न	और न ही
उत्फुल्लकमलम्	विकसित (खिले हुए) कमलों से युक्त
सरः	तालाब / सरोवर
आनन्दयति	आनन्दित करता है
चेतांसि	मन / हृदय / अन्तःकरण
यथा	जिस प्रकार
सज्जनचेष्टितम्	सज्जन पुरुषों का आचरण / व्यवहार / सद्कर्म

पदच्छेदः - हिमांशुमाली, न, तथा, न, उत्फुल्ल-कमलम्, सरः, आनन्दयति, चेतांसि, यथा, सज्जन-चेष्टितम्।

भावार्थ

इस अत्यंत काव्यात्मक श्लोक में कामन्दक सज्जनों के आचरण को प्रकृति की सर्वोत्तम वस्तुओं से भी श्रेष्ठ घोषित करते हैं। वे कहते हैं-चन्द्रमा (हिमांशुमाली) और खिले हुए कमलों वाला सरोवर (उत्फुल्लकमलं सरः) मन को जितना आनन्द नहीं देते, उतना **सज्जनों का चेष्टित (व्यवहार/सत्कर्म) मन को आनन्दित करता है**। अर्थात् प्राकृतिक सौन्दर्य (जो निष्क्रिय वस्तु है) मानव-हृदय को कुछ पल के लिए मोहित कर सकता है, किन्तु किसी सद्गुणी व्यक्ति का कृतार्थ, दयालु एवं न्यायसंगत कर्म (जैसे परोपकार, सत्य-भाषण, अभय-दान) आत्मा को गहरे स्तर पर तृप्त करता है।

यहाँ 'आनन्द' भौतिक सुख (सौन्दर्य-बोध) नहीं, अपितु **'चेतस्'** (अंतःकरण) का तृप्तीकरण है। चाँदनी रात और कमल-सरोवर तो जड़ जगत् के उदाहरण हैं, जबकि सज्जन-चेष्टित सचेतन (चेतन) अस्तित्व की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है। इस तरह, कामन्दक स्पष्ट करते हैं कि मानव-जीवन का सर्वोच्च आनन्द केवल सजीव नैतिक क्रियाकलापों में ही निहित है, न कि प्राकृतिक दृश्यों या काम-भोगों में।

दार्शनिक विवेचन

यह श्लोक **'अहैतुकी कृपा' (Grace) और 'सौन्दर्य-दर्शन'** का अनूठा समन्वय करता है। पाश्चात्य दर्शन में **कांट (Kant)** ने प्रकृति के सौन्दर्य को 'निःस्वार्थ आनन्द' (Disinterested Pleasure) का आधार माना, पर कामन्दक उससे आगे बढ़कर कहते हैं कि **नैतिक कर्म (Moral Action) का आनन्द** उससे भी अधिक 'निःस्वार्थ' एवं गहरा होता है, क्योंकि वह जड़ (Inanimate) से न आकर चेतन (Conscious)

कर्ता से निकलता है। यह **भारतीय रस-शास्त्र** के 'शान्त रस' (जो सदाचार से उत्पन्न होता है) से मेल खाता है, जो वीर रस या शृंगार रस से उत्कृष्ट माना जाता है।

यहाँ 'सज्जनचेष्टित' में कर्म-योग की झलक है-श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि कर्म का फल त्यागकर किया गया कर्म (निष्काम कर्म) ही मन को शांति देता है। यह 'सुख' (श्लोक १३ का) अपने शिखर पर आनन्द में बदल जाता है। दार्शनिक 'मानवतावाद' (Humanism) भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि मानवीय गरिमा (Human Dignity) और करुणा के कार्य प्रकृति की सबसे सुन्दर वस्तु से भी महान हैं। इस प्रकार, यह श्लोक नीति-शास्त्र (Ethics) को 'मेटाफिजिक्स' से ऊपर रखता है, क्योंकि सज्जन का चेष्टित स्वयं 'ब्रह्म-व्यवहार' है।

आधुनिक संदर्भ

आज का मनुष्य, जो अपने फोन पर प्राकृतिक दृश्यों (सूर्यास्त, समुद्र, फूलों) की लाखों तस्वीरें देखता है, परन्तु मानसिक रूप से अकेला (Lonely) और उदास है-यही इस श्लोक की सबसे बड़ी व्याख्या है। Instagram और YouTube पर 'खूबसूरत लोकेशन्स' लाखों 'लाइक्स' तो जीत लेती हैं, किन्तु वे मानसिक शांति (चेतस् का आनन्द) का स्थायी स्रोत नहीं हैं। **'सज्जनचेष्टितम्'** आधुनिक भाषा में है-**स्वयंसेवा (Volunteering), दान (Charity), सत्यनिष्ठा से करियर बनाना, अपने अधीनस्थों के प्रति दयालुता और पर्यावरण-रक्षा के लिए ठोस कदम**।

मनोविज्ञान का 'हेल्पर'स हाई' (Helper's High) सिद्धान्त भी कहता है कि दूसरों की सहायता करने से अपने मस्तिष्क में 'डोपामाइन' का स्राव होता है, जो किसी सुन्दर दृश्य को देखने से कहीं अधिक है। इसके अलावा, आज के वैश्विक संकट (जलवायु परिवर्तन, युद्ध) में, प्रकृति की सुन्दरता (खिले कमल) तो लुप्त हो रही है, परन्तु यदि हम 'सज्जन-चेष्टित' (अहिंसक नीतियाँ, संधियाँ, सहयोग) अपनाएँ, तो वही मानवता को वास्तविक आनन्द (शाश्वत सुख) दे सकता है। सारांशतः, यह श्लोक हमें 'सौन्दर्य-पूजा' से 'सद्कर्म-पूजा' की ओर ले जाता है।

ग्रीष्मसूर्यांशुसन्तप्तम् उद्वेजनम् अनाश्रयम् ।

मरुस्थलम् इवोदग्रं त्यजेद् दुर्जनसंश्रयम् ॥१६॥

IAST

grīṣmasūryāṃśusantaptam udvejanam anāśrayam |

marusthalam ivodagraṃ tyajed durjanasaṃśrayam ||16||

शब्दार्थ

ग्रीष्मसूर्यांशुसन्तप्तम्	ग्रीष्म (गर्मी) के सूर्य (सूर्य) की किरणों (अंशु) से संतप्त (जला-भुना) हुआ।
उद्वेजनम्	उद्वेग पैदा करने वाला / बेचैन करने वाला।
अनाश्रयम्	आश्रय / छाया / सहारा रहित।
मरुस्थलम्	रेगिस्तान (मरु-स्थल)।

इव	के समान।
उदग्रम्	ऊँचा / खुरदरा / उत्तेजित (विकट)।
त्यजेत्	त्याग दे / छोड़ दे।
दुर्जनसंश्रयम्	दुर्जनों (बुरे लोगों) का आश्रय / संग।

पदच्छेदः - ग्रीष्म-सूर्य-अंशु-सन्तप्तम्, उद्वेजनम्, अनाश्रयम्, मरुस्थलम्, इव, उदग्रम्, त्यजेत्, दुर्जन-संश्रयम् ॥

भावार्थ

इस श्लोक में कामन्दक कहते हैं कि जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु की प्रचंड धूप से झुलसा हुआ, जहाँ कोई वृक्ष या छाया न हो, तथा जो उद्वेगजनक और विकट रेगिस्तान होता है-उसे कोई बुद्धिमान पथिक तुरंत त्याग देता है, ठीक उसी प्रकार बुद्धिमान राजा (या सामान्य व्यक्ति) को **दुर्जनों के संग को तुरंत त्याग देना चाहिए**। दुर्जन का संग स्वभावतः रेगिस्तान की भाँति शुष्क, कठोर, निष्फल और दुःखदायी होता है, जहाँ स्नेह, विश्वास और शान्ति की कोई वर्षा नहीं होती। केवल कष्ट, ईर्ष्या और अहंकार ही मिलते हैं। इसलिए इस संग में रहने से व्यक्ति को न तो आत्मिक शान्ति मिलती है, न सुख, न ही कोई सार्थक उन्नति। जैसे यात्री मरुभूमि को छोड़कर ही जीवन की ओर बढ़ता है, वैसे ही सुख-शान्ति चाहने वाले को दुर्जन-संग का परित्याग करना ही एकमात्र सज्जन-कर्तव्य है। यह श्लोक संगति के महत्त्व की चरम सीमा को रेखांकित करता है।

दार्शनिक विवेचन

दार्शनिक दृष्टि से यह श्लोक **'सत्संग' एवं 'कुसंग'** की उपमा का अत्यंत उत्कृष्ट उदाहरण है। रेगिस्तान में निवास करने वाले जीवों (बिच्छू, साँप आदि) का स्वभाव ही विषैला होता है-यह संसार का प्राकृतिक नियम है कि निवास-स्थान (संगति) व्यक्ति के मूल-स्वभाव को निर्धारित करता है। कामन्दक यहाँ आत्म-रक्षा के **'शुद्ध विवेक'** (Pure Discernment) का पक्ष लेते हैं, जो पातंजल योगदर्शन के 'अभ्यास-वैराग्य' के समीप है। रेगिस्तान जैसा नीरस एवं कष्टकारी वातावरण अज्ञानता एवं मोह को जन्म देता है, जबकि मरुद्यान (सज्जन संगति) बुद्धि, करुणा और ज्ञान की वर्षा करता है। शंकराचार्य के 'भज गोविन्दम्' में उल्लिखित 'संगच्छेदः' का यही अर्थ है-कुसंग-नाश ही मोक्ष-प्राप्ति का प्रथम द्वार है। पाश्चात्य दार्शनिक विट्गेन्स्टाइन कहते हैं-'मेरी भाषा की सीमा ही मेरे संसार की सीमा है'-यहाँ दुर्जन-संग उस संसार को संकुचित, तप्त और निराश्रित बना देता है। अतः शास्त्र का यह निर्देश 'आत्म-संरक्षण' का व्यावहारिक मात्र नहीं, वरन् 'आत्म-कल्याण' का गहन दार्शनिक सूत्र है।

आधुनिक संदर्भ

आज के संदर्भ में यह श्लोक हमें **'टॉक्सिक रिलेशनशिप' (विषाक्त संबंधों)** और **'टॉक्सिक कार्य-संस्कृति'** को त्यागने की प्रेरणा देता है। सोशल मीडिया के युग में, बहुत से लोग अपनी मर्जी से ऐसे मित्रों, समूहों या नेटवर्क से जुड़े रहते हैं, जो मानसिक तनाव (रेगिस्तानी ताप) उत्पन्न करते हैं, बिना किसी वास्तविक सहारे के। यदि कोई कार्यस्थल, राजनीतिक दल, या सामाजिक समूह लगातार आपके आत्मविश्वास, शान्ति और ऊर्जा को क्षीण करता है, तो 'ग्रीष्म-मरुस्थल' के सिद्धान्त से उसे तुरंत छोड़ना चाहिए। उदाहरण के लिए, **क्विट-टॉक्सिक-कल्चर (Quiet Quitting के बाद)** का नया चलन, मानसिक स्वास्थ्य को प्राथमिकता, और 'नो-कॉन्टैक्ट' नियम, सभी इसी श्लोक के आधुनिक व्यावहारिक रूप हैं। कोविड महामारी के बाद अनेक लोगों ने अस्वास्थ्यकर मेट्रो-जीवन एवं प्रतिस्पर्धा को त्यागकर

सरल, सज्जन-समाज में लौटने का निर्णय लिया, जो इस श्लोक की सार्थकता को पुष्ट करता है-क्योंकि मरुस्थल में रहने से कोई हरा-भरा नहीं होता।

श्रुतशीलोपसम्पन्नम् अकस्माद् एव दुर्जनः ।

अन्तः प्रविश्य दहति शुष्कवृक्षम् इवानलः ॥१७॥

IAST

śrutaśīlopasampannam akasmād eva durjanaḥ |

antaḥ praviśya dahati śuṣkavṛkṣam ivānalaḥ ||17||

शब्दार्थ

श्रुतशीलोपसम्पन्नम्	श्रुत (वेद/शास्त्र-ज्ञान) तथा शील (सदाचार) से सम्पन्न (सुसज्जित) व्यक्ति को।
अकस्मात्	अचानक / बिना किसी पूर्व-संकेत के।
एव	ही।
दुर्जनः	बुरा / कपटी व्यक्ति।
अन्तः	भीतर / अन्तरंग में।
प्रविश्य	प्रवेश करके।
दहति	जला देता है / नष्ट कर देता है।
शुष्कवृक्षम्	सूखे हुए पेड़ को।
इव	जैसे।
अनलः	आग / अग्नि।

पदच्छेदः - श्रुत-शील-उपसम्पन्नम्, अकस्मात्, एव, दुर्जनः, अन्तः, प्रविश्य, दहति, शुष्क-वृक्षम्, इव, अनलः ॥

भावार्थ

इस श्लोक में दुर्जन की निपुणता और विध्वंसकता का अत्यंत मार्मिक चित्रण है। एक विद्वान, सदाचारी एवं सुशील व्यक्ति (जो सब प्रकार से सुरक्षित प्रतीत होता है) के अन्तःकरण में कपटी दुर्जन किसी आकस्मिक बहाने से प्रवेश पा जाता है-और फिर उस विद्वान को **अन्दर से ही जला डालता है**, बिल्कुल वैसे जैसे आग किसी सूखे पेड़ (जिसे बाहर से हरा देखकर लोग भ्रम में पड़ जाएँ, किन्तु भीतर से सूखा हो) को चपेट में लेकर क्षण-भर में भस्म कर देती है। यहाँ 'शुष्कवृक्ष' का आशय यह नहीं कि सज्जन दोषी है; वरन् यह दर्शाना है कि **विश्वास और सरलता (शील)** ही दुर्जन के लिए प्रवेश-द्वार है, क्योंकि दुर्जन पाखंडी होता है-वह बाहर से मीठा बोलकर विश्वास जीतता है, फिर आस्था, सम्मान एवं ऊर्जा को नष्ट कर देता है। इसका परिणाम केवल व्यक्तिगत पतन नहीं, वरन् समाज में सद्गुणों का विनाश भी होता है। अतः केवल बाह्य सज्जनता ही सुरक्षा नहीं, बल्कि संगति की निरन्तर परीक्षा आवश्यक है।

दार्शनिक विवेचन

दार्शनिक दृष्टि से यह श्लोक **'अद्वैत-भ्रम' (Illusion of Appearances)** को भेदता है। शुष्क वृक्ष जैसा दिखने वाला बाह्य ज्ञान और सदाचार, आग (दुर्जन) के सम्पर्क में आकर भस्म हो जाता है, अर्थात बाह्य

आभा माया है। नीतिशास्त्र में यह **'विश्वासघात' (Betrayal)** का मूल प्रश्न उठाता है-दुर्जन की क्या प्रकृति है? कामन्दक मानव-चित्त को 'दहनशील' (ज्वलनशील) नहीं, बल्कि 'शुष्क' (संवेदनशील) बताते हैं, जिसे एक दुष्ट बीज (अकस्मात्) ही विध्वंस करने के लिए पर्याप्त है। इससे हम **आचार्य चाणक्य** के 'विषम-संग' सिद्धान्त से सहमत होते हैं-'विश्वासो हि परं दुःखम्' (अति-विश्वास ही महादुःख है)। मनोविश्लेषण के अनुसार, 'आन्तरिक आग' (Internal Aggression) प्रायः उसी पर टूटती है, जो अत्यधिक सौम्य एवं अनुशासित होता है, क्योंकि वह बाहरी आक्रमण का उत्तर नहीं देता। नीतिशास्त्र में इसी को **'सौम्यता का शाप' (Curse of Gentleness)** कहा गया है-अतः सज्जन को सजगता (अकस्मात् से बचाव) ही अपना धर्म बनाना चाहिए।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक युग में यह श्लोक **'इनसाइडर थ्रेट्स' (आन्तरिक खतरों)** और **'इमोशनल अब्यूज़' (मानसिक हिंसा)** को स्पष्ट करता है। आज के कॉर्पोरेट जगत में एक उच्च-योग्य, ईमानदार कर्मचारी अपने निकटतम सहयोगी (जो प्रतीत होता है कि मित्र है) के षड्यंत्र से अपनी प्रतिष्ठा, नौकरी और मानसिक शान्ति खो बैठता है। **साइबर-धोखाधड़ी (Phishing)** में भी यही होता है-हैकर पहले विश्वास (वैध ई-मेल बनाकर) अर्जित करता है, फिर भीतर घुसकर डेटा 'जला' देता है। **राजनीति में**-कोई धर्मनिष्ठ नेता किसी छद्म-सलाहकार के कारण जनविश्वास गँवा देता है। इसी प्रकार, **पारिवारिक सम्बन्धों** में भी कोई रिश्तेदार बाहर से हितैषी बनकर आता है और भीतर-घात करता है-जैसे सम्पत्ति विवाद या मनोवैज्ञानिक प्रताड़ना। इस श्लोक का आधुनिक संदेश स्पष्ट है-केरियर या जीवन में किसी को भी 'अकस्मात्' (बिना पारखे) अपने अन्तरंग (घर, ई-मेल, दिमाग) में प्रवेश न दें; शुष्कवृक्ष अर्थात आत्म-विवेक को सदा हरा-भरा रखने के लिए 'दुर्जन-अग्नि' से सतर्क रहें।

निःश्वासोद्गीर्णहुतभुग्धूमधूम्रीकृताननैः ।

वरम् आशीविषैः सङ्गं कुर्यान् न त्व् एव दुर्जनैः ॥१८॥

IAST

niḥśvāsodgīrṇahutabhugdhūmadhūmrīkṛtānanaiḥ |

varam āśīviṣaiḥ saṅgaṃ kuryān na tv eva durjanaiḥ ||18||

शब्दार्थ

निःश्वासोद्गीर्णहुतभुग्धूमधूमीकृताननैः	जिनके मुँह (आनन) निःश्वास (साँस) के साथ उद्गीर्ण (निकाली गयी) हुतभुक् (अग्नि) के धुएँ से धूम्र (काला) किये गये हैं (अर्थात अत्यन्त भयानक विषधर सर्प)।
वरम्	अच्छा / श्रेष्ठ (यहाँ 'किया जाए तो अच्छा')।
आशीविषैः	विषैले सर्पों (आशी = दाँत, विष = विष) के साथ।
सङ्गम्	संग / मित्रता / सम्बन्ध।
कुर्यात्	करे (चाहिए)।
न	नहीं।
तु	किन्तु / परन्तु।

एव	ही।
दुर्जनैः	दुष्ट मनुष्यों के साथ।

पदच्छेदः - निःश्वास-उद्गीर्ण-हुतभुक्-धूम-धूमीकृत-आननैः, वरम्, आशीविषैः, सङ्गम्, कुर्यात्, न, तु, एव, दुर्जनैः ॥

भावार्थ

यह श्लोक अपनी चरम उक्ति के लिए प्रसिद्ध है। कामन्दक घोषणा करते हैं कि **जिन सर्पों के मुँह से निकली भयानक अग्नि-धूम्र (कालिख) ने उनका मुखमण्डल काला कर दिया है, ऐसे प्रचण्ड विषैले सर्पों से मित्रता करना कहीं अधिक श्रेयस्कर है, परन्तु दुर्जन मनुष्यों से कभी नहीं**। सर्प स्वभावतः विषैला होता है, किन्तु उसका विष भौतिक एवं प्रत्यक्ष है-उसे देखकर सावधान हो सकते हैं, उसका दंश प्रायः तत्काल दिख जाता है, और वह अपनी बुराई को छिपाता नहीं। जबकि दुर्जन मनुष्य **द्विपाद, छद्मवेषी, मधुरभाषी** होता है-वह अपने विष को मित्रता, सहानुभूति, या प्रशंसा के आवरण में घोलकर देता है। उसका विनाश अप्रत्यक्ष, धीमा, और सर्वनाशी होता है। सर्प केवल शरीर को मारता है, पर दुर्जन चरित्र, सम्मान, विश्वास और समाज को नष्ट करता है। अतः 'प्रत्यक्ष शत्रु' (सर्प) 'छद्म मित्र' (दुर्जन) से सुरक्षित है। यह श्लोक संगति के चयन में **अत्यंत कठोर बुद्धि** का उपदेश देता है।

दार्शनिक विवेचन

दार्शनिक दृष्टि से इस श्लोक में **'प्रत्यक्ष एवं परोक्ष हिंसा' (Direct vs Indirect Violence)** का दार्शनिक भेद स्पष्ट है। भारतीय दर्शन में 'द्वन्द्व-सहिष्णुता' के विपरीत यहाँ **'स्पष्टवादिता' (Honesty)** को गुण माना गया है-सर्प अपने विष को नहीं छिपाता, यह तो राग-द्वेष में आकर काटता है, जबकि दुर्जन सदा 'मायाजाल' में रहता है। यह प्लेटो की **'मिथ्या' (Falsehood)** और 'सत्य' के संघर्ष को उठाता है, जहाँ सत्य (सर्प) को अहितकर भी श्रेष्ठ क्यों माना जाए? क्योंकि सत्य से बचाव संभव है, जबकि मिथ्या (दुर्जन) विवेक को भ्रष्ट कर देती है। उपनिषदों में कहा गया है-'सत्यं एव जयति', यहाँ कामन्दक व्यावहारिक स्तर पर कहते हैं कि सत्य-विष (सर्प) का दंश एक बार का है, किन्तु दुर्जन का 'असत्य-विष' आजीवन पीड़ा देता है। यह **'ज्ञान-मीमांसा'** में 'संशय' और 'भ्रम' के विरुद्ध 'प्रत्यक्ष-प्रमाण' की महत्ता को भी दर्शाता है-जो सामने हो, उससे डरना आसान, पर जो मुस्कुराता हुआ पीठ में खंजर मारे, उससे डरना असम्भव। अतः शास्त्र आत्मरक्षा की प्रधानता सिखाता है।

आधुनिक संदर्भ

आज का युग **'स्मार्ट दुर्जन'** (Smart Manipulators) का है-सोशल मीडिया पर 'कूल फ्रेंड', ऑफिस में 'मेंटर' बनने वाला गैसलाइटर, या राजनीति में 'छद्म मसीहा'। इस श्लोक का आधुनिक पाठ यह है कि **'खुला खतरा' (Open Danger) 'छिपा विष' (Hidden Poison) से बेहतर** है। साईबर सुरक्षा में, एक स्पष्ट वायरस (जो Antivirus पकड़ ले) बनाम एक ट्रोजन (जो मित्रवत ऐप बनकर बैठ जाए) की तुलना इसी से होती है। व्यावसायिक जगत में **'टॉक्सिक पॉजिटिविटी'** (जहाँ लोग बुराई को तारीफों में लपेटते हैं) सर्पों से भी बदतर है। विश्व इतिहास में-**ऐलेन्स्की, स्टालिन, हिटलर** के 'विश्वासघाती' सलाहकार, या आधुनिक कॉर्पोरेट **'फ्रॉड'** जैसे FTX के सैम बैंकमैन, सब मीठी बातों से विश्वास जीतकर अरबों लोगों को रुला गए। इस श्लोक की शिक्षा है-आँखों देखी बुराई (दुश्मन) को नियंत्रित किया जा

सकता है, परन्तु छद्म-मित्रता (दुर्जन) से बचना ही सर्वोत्तम नीति है। इसलिए आज हमें 'सोशल इंटेलिजेंस' और 'बैकग्राउंड चेक' जैसे आधुनिक औजारों का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

दीयते स्वच्छहृदयैः पिण्डो येनैव पाणिना ।

मार्जार इव दुर्वृत्तस् तम् एव हि विलुम्पति ॥१९॥

IAST

dīyate svacchahṛdayaiḥ piṇḍo yenaiva pāṇinā |
mārjāra iva durvṛttas tam eva hi vilumpati ||19||

शब्दार्थ

दीयते	दिया जाता है।
स्वच्छहृदयैः	निर्मल / सरल हृदय वाले (सज्जन) लोगों द्वारा।
पिण्डः	आहार-पिण्ड / अन्न-दान / भोजन का लड्डू।
येन एव	जिस (हाथ) से ही।
पाणिना	हाथ द्वारा।
मार्जार इव	बिल्ली के समान।
दुर्वृत्तः	दुष्ट आचरण वाला (दुर्जन)।
तम् एव	उसी को (हाथ/व्यक्ति को)।
हि	निश्चय ही।
विलुम्पति	नष्ट कर देता है / लूट लेता है (छीन-कर)।

पदच्छेदः - दीयते, स्वच्छ-हृदयैः, पिण्डः, येन, एव, पाणिना, मार्जारः, इव, दुर्वृत्तः, तम्, एव, हि, विलुम्पति ॥

भावार्थ

इस अत्यंत मार्मिक श्लोक में दुर्जन की **'घातुक कृतघ्नता' (Destructive Ingratitude)** का चित्रण है। सरल एवं निर्मल हृदय वाले सज्जन जिस हाथ से दुर्जन को अन्न, धन या सहयोग (पिण्ड) देते हैं, उसी हाथ को-अर्थात उसी परोपकारी व्यक्ति को-दुर्जन **बिल्ली की भाँति नष्ट कर लेता है**। बिल्ली देखने में पालतु और सीधी लगती है, पर वह मौका पाकर उसी हाथ को नोंच-खरोंच देती है जो उसे दूध-रोटी देता है। यहाँ दुर्जन शारीरिक रूप से ही नहीं, वरन् चरित्र-हत्या, बदनामी, आर्थिक शोषण या विश्वासघात द्वारा उस उपकारी को 'लुण्टित' कर देता है। कृतज्ञता का अभाव दुर्जन का जन्म-स्वभाव है-वह उपकार को ऋण न समझकर दुर्बलता समझता है। अतः नीतिकार स्पष्ट चेतावनी देते हैं कि नीति-कुशल व्यक्ति को **दान या सहायता** करते समय पात्रता और परख अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि अयोग्य को दिया गया अन्न (पिण्ड) आत्म-घातक सिद्ध होता है।

दार्शनिक विवेचन

दार्शनिक स्तर पर यह श्लोक **'कृतघ्नता' (Ingratitude)** को मानवीय दोषों में सबसे घोर मानता है। यह **'कर्मफल-सिद्धान्त'** का उल्टा पक्ष है-जहाँ उपकार का फल उपकार मिलना चाहिए, वहाँ दुर्जन विपरीत आचरण करता है। यह **'अहंकार-अज्ञान'** की पराकाष्ठा है, क्योंकि कृतघ्न व्यक्ति अपने पालन-

पोषण (पिण्ड) के स्रोत (हाथ) को ही अपनी सफलता में बाधक मानने लगता है। नीतिदर्शन में इसे **'मार्जार-नीति'** कहा गया है-बिल्ली जैसे पालतू प्राणी की कपटता इस बात का प्रतीक है कि सबसे बड़ा शत्रु वही है जो आपकी दया पर पला-बढ़ा हो। **मैकियावेली** का 'शेर और लोमड़ी' यहाँ उलट जाता है-बिल्ली लोमड़ी से भी छली है। दार्शनिक रूप से, यह **'दया का दुरुपयोग'** (Abuse of Compassion) का प्रश्न है-बौद्ध दर्शन में 'करुणा' को अंधी न कर 'प्रज्ञा' से संयुक्त करने का निर्देश यहीं से आता है। अनुग्रह (स्वच्छहृदय) और दण्ड (सजगता) का सन्तुलन बिगड़ने पर समाज में 'पिण्ड-दाता' स्वयं शिकार बन जाता है, अतः न्याय-दर्शन में 'पात्रता-परीक्षण' (Eligibility Test) का सिद्धान्त महत्वपूर्ण है।

आधुनिक संदर्भ

आज का 'बिल्ली' का रूप **'ट्रॉयन हॉर्स' (Trojan Horse)** या **'कैटफिशिंग' (Catfishing)** है। कोई अपने करीबी रिश्तेदार, व्यवसायी भागीदार, या सोशल मीडिया मित्र, जिसे हमने मुश्किल वक्त में आर्थिक/मानसिक सहारा दिया, वही हमारा डेटा चुरा लेता है, हमारी फर्म को बर्बाद कर देता है, या हमारे पारिवारिक सम्मान को ठेस पहुँचाता है। इसका उदाहरण **स्टार्टअप कल्चर** में भी है-जहाँ संस्थापक किसी करीबी सह-संस्थापक को इक्विटी (पिण्ड) देता है, और वही व्यक्ति बाद में बोर्ड पर कब्जा करके संस्थापक को निकाल देता है ('बिल्ली' का व्यवहार)। राजनीति में-**जनता द्वारा चुना गया नेता** अक्सर जनता के उसी हाथ को काटता है (भ्रष्टाचार, जन-विरोधी नीतियाँ)। भारतीय संदर्भ में कहावत है-'साँप पाले और दूध पीले'-यही भाव। इसका हल यह है-**'दान' या 'अवसर'** देने से पहले 'रिवॉर्ड' और 'रिस्क' का आकलन करें; दान देते हुए भी अपनी सीमा (बाउंड्री) स्पष्ट रखें, ताकि 'मार्जार' (दुर्जन) उस हाथ को नोच न सके, जो उसे खिलाता है।

असाध्यं साधुमन्त्राणां तीव्रं वाग्विषम् उत्सृजत् ।

द्विजिह्वं वदनं धत्ते दुष्टो दुर्जनपन्नगः ॥२०॥

IAST

asādhyaṃ sādhumantrāṇāṃ tīvraṃ vāgviṣam utsṛjat |

dvijihvaṃ vadanaṃ dhatte duṣṭo durjanapannagaḥ ||20||

शब्दार्थ

असाध्यम्	जो साध्य (उपचार / मन्त्र) से भी न हो सके / असाधारण / अत्यन्त दुःसाध्य।
साधुमन्त्राणाम्	सज्जनों के (या शुद्ध) मन्त्रों / उपायों / दवाओं के द्वारा भी।
तीव्रम्	तीक्ष्ण / भयंकर / प्रचण्ड।
वाग्विषम्	वाणी-रूपी विष (वचनों का जहर)।
उत्सृजत्	उगलता हुआ / छोड़ता हुआ।
द्विजिह्वम्	दो जीभों वाला (दोधारी / द्व्यर्थी वाणी) ।
वदनम्	मुँह।
धत्ते	धारण करता है / रखता है।
दुष्टः	दुष्ट / खल।
दुर्जनपन्नगः	दुर्जन-रूपी सर्प (पन्नग = सर्प)।

पदच्छेदः - असाध्यम्, साधु-मन्त्राणाम्, तीव्रम्, वाक्-विषम्, उत्सृजत्, द्वि-जिह्वम्, वदनम्, धत्ते, दुष्टः, दुर्जन-पन्नगः ॥

भावार्थ

अंतिम श्लोक में दुर्जन को **'दोधारी सर्प' (द्विजिह्व पन्नग)** की संज्ञा देकर उसकी वाणी की भयावहता बताई गई है। दुर्जन अपने मुँह से अत्यंत तीव्र, कास्टिक, और विषैले वचन उगलता है, जो **इतना विषाक्त होता है कि साधु-मन्त्र (पवित्र मन्त्र, औषधियाँ, या सज्जनों के उपदेश) भी उसे साध्य (ठीक) नहीं कर सकते**। सर्प की दो जीभें (जीभ का द्विखंडन) उसके वचनों की कपट-प्रकृति का प्रतीक है-एक जीभ से मीठा (प्रशंसा) और दूसरी से कटु (गाली/अपमान) बोलता है, और श्रोता यह नहीं पहचान पाता कि कब वह डंस लेगा। इस विष का प्रभाव शारीरिक नहीं, वरन् **'मानसिक एवं सामाजिक'** होता है-यह अपमान, भय, भ्रम, अविश्वास और आत्म-ग्लानि उत्पन्न करता है, जो वर्षों तक ठीक नहीं होता। शास्त्रों के 'मन्त्र' (ज्ञान/उपदेश) भी जहाँ त्रुटिहीन जनों के लिए कारगर हैं, वहाँ दुर्जन का वाक्य-विष इतना दुष्प्रभावी है कि वह किसी भी सकारात्मक चिकित्सा को विफल कर देता है-अतः बचाव ही इसका एकमात्र इलाज है।

दार्शनिक विवेचन

यह श्लोक **'शब्द-ब्रह्म' (Speech as Ultimate Reality)** की अवधारणा को उलटता है-वाणी यदि विवेक-युक्त है तो मन्त्र (ब्रह्म) बनती है, और यदि दुर्जन की है तो 'असाध्य विष' बन जाती है। भारतीय दर्शन में 'वाक्' को 'महाभूत' माना गया है-यहाँ कामन्दक मन्त्र-शक्ति की भी सीमा स्वीकारते हैं, जो नीतिशास्त्र में दुर्लभ है। इसका अर्थ है-**शब्दों का प्रभाव कर्मों से भी गहरा होता है**, क्योंकि कर्म का प्रायश्चित्त हो सकता है, परन्तु कटु वचन का मानसिक आघात सदा बना रहता है। 'द्विजिह्वता' (दोधारी बात) माया (छल) का दार्शनिक प्रतीक है, जो अद्वैत में 'अनिर्वचनीय' है-दुर्जन कहाँ सत्य कहाँ असत्य बोलता है, यह निर्धारित नहीं हो पाता। **सुकरात** ने भी 'बुरी वाणी' को आत्मा का रोग माना, और **नित्से** ने 'मानव-भाषा को झूठ का पुल' कहा। कामन्दक का निष्कर्ष है-जैसे सर्प के विष का कोई प्रभावी 'प्रतिकूल' (Antidote) नहीं होता, वैसे ही दुर्जन की अपशब्द-परंपरा (गपशप, बदनामी, व्यंग्य) को रोकना असंभव; अतः एकमात्र मार्ग है-**उसके समीप ही न जाएँ** (इसी से पिछले श्लोकों का समापन होता है)।

आधुनिक संदर्भ

आज के **साइबर-युग** में 'द्विजिह्व वाणी' **'फेक न्यूज़' (झूठी खबर), 'हैट स्पीच' (घृणा-वाणी), 'गैसलाइटिंग' (मानसिक हेरफेर)** और **'ट्रोलिंग'** के रूप में सामने आती है। एक ट्वीट या वायरल पोस्ट में उगला गया विषैला शब्द किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा, मानसिक स्वास्थ्य, करियर को इस कदर नष्ट कर सकता है कि लाख 'मन्त्रों' (माफी, फैक्ट-चेक, थेरेपी) के बावजूद वह 'असाध्य' बना रहता है-जैसे 'सुसाइड-लीडिंग ट्रोलिंग' या 'डीपफेक बदनामी'। **कॉर्पोरेट PR** में भी 'द्विजिह्वता' देखी जाती है-कम्पनी एक हाथ से ग्राहकों को 'सस्टेनेबिलिटी' का मन्त्र सुनाती है, दूसरी जीभ से प्रदूषण फैलाती है। इसका प्रतिकार आज 'मीडिया साक्षरता' (Media Literacy) और 'संवाद-प्रबन्धन' (Communication Management) है-पर कामन्दक कहते हैं, ये मन्त्र भी अक्सर असफल होते हैं, जब दुर्जन जानबूझकर विष छिड़कता है। अतः आधुनिक नागरिक का प्रमुख कर्तव्य है-**विश्वसनीय स्रोतों की पहचान**, **सोशल मीडिया पर सीमा (Boundary) निर्धारण**, और **बदनाम करने वालों के प्रति शीत-युद्ध (Grey**

Rock Method) अपनाना, क्योंकि उस 'दुर्जन-पन्नग' के वाक्-विष से बचने का एकमात्र उपाय उसकी अनदेखी और दूरी ही है।

मधुर वाणी सबसे बड़ा अस्त्र क्यों?

क्रियतेऽभ्यर्हणीयाय सुजनाय यथाञ्जलिः ।

ततः साधुतरः कार्यो दुर्जनाय शिवार्थिना ॥२१॥

IAST –

kriyate 'bhyarhaṇīyāya sujanāya yathāñjaliḥ |

tataḥ sādhutaraḥ kāryo durjanāya śivārthinā ||21||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
क्रियते	किया जाता है / प्रदर्शित किया जाता है
अभ्यर्हणीयाय	पूज्य / आदर के योग्य व्यक्ति के प्रति
सुजनाय	सज्जन / अच्छे मनुष्य के प्रति
यथा	जैसे / जिस प्रकार
अञ्जलिः	हाथों की अञ्जलि (नमस्कार / अभिवादन)
ततः	उससे (अधिक) / उससे भी
साधुतरः	अधिक उत्तम / अधिक कुशलतापूर्ण
कार्यः	किया जाना चाहिए (व्यवहार)
दुर्जनाय	दुष्ट / कुटिल व्यक्ति के प्रति
शिवार्थिना	अपने कल्याण / सुरक्षा की इच्छा रखने वाले द्वारा

भावार्थ

सामान्य रीति तो यह है कि किसी सज्जन, विद्वान या गुणी व्यक्ति का आदर-सत्कार नम्रता एवं अञ्जलि (विनम्र अभिवादन) से किया जाता है। किन्तु कामन्दक कहते हैं कि जो मनुष्य अपनी सुरक्षा और हित चाहता है, उसे **दुष्ट व्यक्ति के साथ उससे भी अधिक विनम्र, सौम्य और कुशलतापूर्ण व्यवहार** करना चाहिए। यहाँ 'साधुतरः' शब्द अत्यंत महत्वपूर्ण है-इसका अर्थ केवल 'अधिक अच्छा' नहीं, बल्कि 'अधिक चतुर, मृदु और सावधानीपूर्ण' है। दुष्ट व्यक्ति अहंकारी, ईर्ष्यालु और प्रतिशोधी होता है; उसकी आँखों में धूल झोंकने या उसे नीचा दिखाने की अपेक्षा, उसे श्रेष्ठता का अनुभव कराकर ही अपनी रक्षा की जा

सकती है। यह कायरता नहीं, अपितु **राजनीतिक समझदारी** है। सज्जन तो सत्य-वचन और सीधे व्यवहार से प्रसन्न हो जाते हैं, पर दुर्जन को वश में करने के लिए 'विनय' ही सबसे बड़ा अस्त्र है-यही इस श्लोक का मर्म है।

दार्शनिक विवेचन

यह श्लोक भारतीय नीतिशास्त्र के **'उपाय-शास्त्र' (युक्तियों की कला)** का प्रतिनिधित्व करता है। यहाँ **'सत्य और साध्य'** का गहन द्वंद्व है। वेदान्त या मीमांसा में 'सत्यं वद' (सत्य बोलो) आदेश है, परन्तु नीतिशास्त्र कहता है-'प्रियं वद' (मधुर बोलो) और 'हितं वद' (हितकर बोलो)। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के 'शाम-दाम-दण्ड-भेद' नीति में यह **'शाम' (साम्य/सौम्यता)** का सूक्ष्मतम रूप है। दार्शनिक दृष्टि से यह **'व्यावहारिक व्यवहारवाद' (Pragmatic Utilitarianism)** है-अपने शिव (कल्याण) के लिए दुर्जन का मान बढ़ाना, आत्मरक्षा का उच्चतम दर्शन है। प्लेटो के 'संवाद-सिद्धान्त' में भी कहा गया है कि अज्ञानी व्यक्ति से सीधा तर्क न करके उसे पहले आत्म-महत्त्व का अनुभव कराएँ; कामन्दक उससे भी आगे बढ़कर कहते हैं कि दुर्जन के प्रति किया गया अति-सम्मान वास्तव में एक **'प्रतिरक्षात्मक युक्ति' (Defensive Strategy)** है, न कि आत्म-अपमान। यह राजर्षि का 'क्षत्र-धर्म' है-जहाँ युद्ध से भी बड़ा धैर्य और मृदुता होती है।

आधुनिक संदर्भ

आज के पेशेवर और सामाजिक जीवन में यह सूत्र अत्यन्त प्रासंगिक है। कार्यालयों में कभी-कभी हमें **'विषैले सहकर्मी' (Toxic Colleagues)** या **'आक्रामक ग्राहक'** मिल जाते हैं। सीधा मुकाबला करने पर विवाद बढ़ता है, इसलिए आधुनिक प्रबंधन-शिक्षा (Management Training) भी 'एफेक्टिव कम्युनिकेशन' में **'नार्सिसिस्ट/ईगो पर्सनेलिटी'** से निपटने के लिए अत्यधिक विनम्रता और तारीफ़ की सलाह देती है। अंतरराष्ट्रीय राजनीति में, छोटे देश बड़ी सुपरपॉवर्स (जो अक्सर दुर्जनवत् व्यवहार करती हैं) के साथ अत्यंत नम्र और कूटनीतिक भाषा अपनाते हैं-यही 'शिवार्थी' की नीति है। इसके अतिरिक्त, सोशल मीडिया पर ट्रोल्स (दुर्जन) से उलझने की बजाय उन्हें अनदेखा करना या विनम्रता से उत्तर देना (जैसे स्टोइक फिलॉसफी) आज की मानसिक स्वच्छता के लिए आवश्यक हो गया है।

ह्लादिनीं सर्वसत्त्वानां सम्यग् जनजिहीर्षया ।

भावयेत् परमां मैत्रीं विसृजेल् लौकिकीं गिरम् ॥२२॥

IAST

hlādinīṃ sarvasattvānāṃ samyag janajihīrṣayā |

bhāvayet paramāṃ maitrīṃ visṛjel laukikīṃ giram ||22||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
ह्लादिनीम्	आनन्ददायिनी / प्रसन्नताकारी

सर्वसत्त्वानाम्	समस्त प्राणियों / सभी जीवों की
सम्यक्	भली-भाँति / उचित रूप से
जनजिहीर्षया	लोगों को जीतने / वश में करने की इच्छा से
भावयेत्	धारण करे / उत्पन्न करे / साधना करे
परमाम्	परम / उत्कृष्ट
मैत्रीम्	मित्रता / स्नेहभाव
विसृजेत्	त्याग दे / छोड़ दे
लौकिकीम्	सांसारिक / साधारण / लोक-व्यवहार की
गिरम्	वाणी / बातचीत / भाषा

भावार्थ

जो व्यक्ति संसार में सबका मन जीतना चाहता है, उसे अपनी वाणी और चित्त में ऐसी सार्वभौमिक मित्रता का विकास करना चाहिए जो समस्त प्राणियों को आनन्दित करे। साथ ही, उसे साधारण लौकिक गिरा (बोलचाल की वह सतही, उबाऊ अथवा वाद-विवादपूर्ण भाषा) का त्याग करना चाहिए। इस श्लोक में **'लौकिकीं गिरम्'** की दो व्याख्याएँ हैं-(१) वह वाणी जो आडम्बरपूर्ण, धोखेबाज या कटु आलोचना से भरी हो; (२) वह साधारण भाषा जिसमें स्नेह-संवेदना न हो, केवल सूचनाएँ हों। राजा या नेता की वाणी में 'ह्लादिनी' (प्रसन्न करने वाली) शक्ति होनी चाहिए, ठीक वैसे ही जैसे वसंत ऋतु सबको सुख देती है। परम मैत्री का अर्थ है-बिना भेदभाव, बिना स्वार्थ के सबसे जुड़ने की अन्तरात्मा। 'विसृजेत्' का अर्थ है कि उसे नीरस, तर्क-वितर्क वाली या सांसारिक चक्करों वाली गप-शप को त्यागकर ऊँचे स्तर की बातें करनी चाहिए, जिससे लोग सहज ही उसकी ओर आकृष्ट हों।

दार्शनिक विवेचन

यह श्लोक **'मैत्री-भावना'** को केवल मनोवैज्ञानिक गुण न मानकर उसे **'राज-साधना'** (शासक की आध्यात्मिक क्रिया) मानता है। बौद्ध दर्शन में 'मैत्री' (मेत्ता) एक ब्रह्मविहार है, पर कामन्दक यहाँ उसे 'जनजिहीर्षा' (लोगों को जीतने की इच्छा) से जोड़ते हैं-यह **'उपाय-कौशल' (Skillful Means)** का महायान बौद्ध सिद्धान्त है, जहाँ बोधिसत्व लोगों को मुक्ति देने के लिए मैत्री-भाषा का उपयोग करते हैं। 'लौकिकी वाचा' का त्याग उपनिषदों की 'परा-विद्या' (परम सत्य) और 'अपरा-विद्या' (लौकिक ज्ञान) की संज्ञा से मेल खाता है। यहाँ 'गिर' (वाणी) का विसर्जन वस्तुतः **'मौन'** नहीं, अपितु **'निरर्थक शब्द-जाल'** का त्याग है। अरस्तू के 'रेटोरिक' (वाग्मिता) में जहाँ जनता को भावुक किया जाता है, वहीं कामन्दक की 'परम मैत्री' भावनात्मक बुद्धिमत्ता (Emotional Intelligence) का प्राचीनतम सूत्र है-यह सत्ता को केंद्रीकृत न करके, 'सर्वसत्त्व' (सभी प्राणी) के साथ तादात्म्य स्थापित करती है, जो अद्वैत वेदान्त के 'अखण्ड चेतना' के समीप है।

आधुनिक संदर्भ

आज के सूचना-प्रौद्योगिकी युग में 'लौकिकी गिरा' का अत्यधिक प्रसार है-सोशल मीडिया पर बिना सोची-समझी पोस्ट, ट्रोलिंग, सनसनीखेज समाचार, और अर्थहीन गपशप। इस श्लोक के अनुसार, एक सफल नेता, ब्रांड एम्बेसडर या प्रभावशाली व्यक्तित्व (Influencer) को अपनी वाणी को **'ह्लादिनी' (सकारात्मक और उत्साहवर्धक)** बनाना चाहिए। कोविड महामारी में जिन नेताओं ने 'सबके प्रति मैत्री' और 'आश्वासन' वाली भाषा बोली (जैसे न्यूज़ीलैण्ड की जेसिंडा अर्डर्न), वे अत्यधिक सफल रहे, जबकि जिन्होंने आरोप-प्रत्यारोप की राजनीति (लौकिक/तुच्छ वाणी) की, वे विफल रहे। इसके अलावा, कॉर्पोरेट क्षेत्र में **'समावेशी नेतृत्व' (Inclusive Leadership)** और **'सकारात्मक मनोविज्ञान' (Positive Psychology)** की यही सीख है-सभी हितधारकों (कर्मचारियों, ग्राहकों, समाज) को आनन्दित करने वाली संस्कृति ही दीर्घकालिक सफलता की कुंजी है।

नित्यं मनोपहारिण्या वाचा प्रह्लादयेज् जनम् ।

उद्वेजनीयो भवति क्रूरवागर्थदोऽपि सन् ॥२३॥

IAST

nityaṃ manopahāriṇyā vācā prahlādayej janam |

udvejanīyo bhavati krūravāgarthado 'pi san ||23||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
नित्यम्	सदा / हमेशा
मनोपहारिण्या	मन को हरने वाली (आकर्षक, मोहक, मधुर)
वाचा	वाणी / बातचीत द्वारा
प्रह्लादयेत्	प्रसन्न / आह्लादित करे
जनम्	लोगों को / प्रजा को
उद्वेजनीयः	घृणास्पद / उद्विग्नता पैदा करने वाला / अप्रिय
भवति	हो जाता है
क्रूरवाक्	कठोर / निष्ठुर वाणी वाला
अर्थदः	धन / वस्तु / सुविधा देने वाला
अपि	भी / यद्यपि
सन्	होता हुआ

भावार्थ

शासक या बुद्धिमान व्यक्ति को अपनी ऐसी वाणी से, जो जनमानस के मन को तुरन्त आकर्षित कर ले, सदैव लोगों को प्रसन्न रखना चाहिए। इसका उल्टा यह है कि जो व्यक्ति कठोर, कर्कश और अभद्र भाषा बोलता है, वह चाहे जितना बड़ा दानी हो, भौतिक सुख-साधन देता हो, फिर भी लोग उससे घृणा करते हैं और वह उद्वेग का कारण बनता है। मानव मनोविज्ञान का यह सूत्र है कि **'मन' भौतिक लाभ से अधिक 'शब्द-मधुरता'** से प्रभावित होता है। एक राजा यदि अपनी प्रजा पर कर लगाता है, किन्तु मधुरभाषी है, तो प्रजा उसे सह लेती है; परंतु यदि वह उदार है परन्तु बोलने में असभ्य है, तो उसका उदारता भी व्यर्थ जाती है। कामन्दक राज-प्रशासन में **'संवाद-कौशल' (Communication Skill)** को राजकोष (अर्थ) और सेना (दण्ड) के समान महत्वपूर्ण मानते हैं। यह श्लोक सीधा मानव-हृदय पर प्रहार करता है-लोग आपका उपकार भूल जाते हैं, पर आपका कठोर वाक्य कभी नहीं भूलते।

दार्शनिक विवेचन

यहाँ **'अर्थ' और 'वाक्'** का तुलनात्मक मूल्यांकन है। आमतौर पर लोकायत (चार्वाक) दर्शन 'अर्थ' (भौतिक सुख) को सर्वोपरि मानता है, परन्तु कामन्दक **'अर्थ' से भी 'वाक्' को श्रेष्ठ** ठहराते हैं, क्योंकि वाक् सीधा मन (चित्त) को स्पर्श करती है। पतंजलि के 'योगसूत्र' में 'वाक्-सत्य' का महत्व है, और यहाँ 'मनोपहारिणी वाचा' का अभ्यास **'सत्य-संयम'** का विस्तार है। हेगेल के 'मास्टर-स्लेव डायलेक्टिक' में स्वामी की पहचान उसकी मान्यता (Recognition) से होती है; क्रूरवाक् स्वामी मान्यता खो देता है। भारतीय दर्शन में 'वाक्' को ब्रह्म का ही रूप माना गया है (ऐतरेय ब्राह्मण)। इसलिए वाक् का दुरुपयोग मानो ब्रह्म का अपमान है। 'उद्वेजनीय' होने का अर्थ है कि वह व्यक्ति स्वयं को देवता या राजा समझे, पर समाज उसे **'राक्षस'** की संज्ञा देता है-यही **'सामाजिक मृत्यु' (Social Death)** का दार्शनिक चित्रण है। अतः जो शक्तिशाली है, उसे अधिक नम्र होना चाहिए; यह 'क्षत्रिय-धर्म' का सौम्य पक्ष है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक कार्यस्थलों (कॉर्पोरेट जगत) में **'इमोशनल बैंकिंग'** और **'कम्युनिकेशन स्किल्स'** पर कितना बल दिया जाता है, यह सर्वविदित है। एक बॉस जो तनख्वाह तो अच्छी देता है, परन्तु कर्मचारियों को गाली देता है या अपमानजनक टिप्पणी करता है, वह 'उद्वेजनीय' बन जाता है-उसकी कंपनी में Attrition Rate (कर्मचारी छोड़ने की दर) बहुत अधिक होती है। इसके विपरीत, एक स्टार्टअप में कम तनख्वाह पर भी मधुर, प्रोत्साहनकारी बॉस सबका चहेता बन जाता है। राजनीति में, **डोनाल्ड ट्रंप** (अमेरिका) या **बोरिस जॉनसन** जैसे नेताओं की कठोर/विवादास्पद वाणी ने उन्हें कुछ वर्गों में अलोकप्रिय बना दिया, जबकि उनकी आर्थिक नीतियाँ अच्छी थीं। इसके अलावा, **ग्राहक-सेवा (Customer Care)** का पूरा ताना-बाना इसी श्लोक पर टिका है-ग्राहक को भले ही कोई मुफ्त सुविधा न मिले, पर मीठी बोली उसे संतुष्ट कर देती है। यह श्लोक हर उस व्यक्ति के लिए आईना है जो 'देने' (अर्थ) को अपना कर्तव्य समझता है, किन्तु 'बोलने' को भूल जाता है।

हृदि विद्ध इवात्यर्थं यया सन्तप्यते जनः ।

पीडितोऽपि हि मेधावी न तां वाचम् उदीरयेत् ॥२४॥

IAST

hṛdi viddha ivātyarthaṃ yayā santapyate janaḥ |

pīḍito 'pi hi medhāvī na tāṃ vācam udīrayet ||24||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
हृदि	हृदय में
विद्धः	विद्ध / छिदा हुआ / बाण लगा हुआ
इव	जैसे / मानो
अत्यर्थम्	अत्यधिक / बहुत ज्यादा
यया	जिस (वाणी) से
सन्तप्यते	संतप्त होता है / जलता है / दुःखी होता है
जनः	लोग / मनुष्य
पीडितः	पीड़ित / कष्ट पाया हुआ
अपि	भी / यद्यपि
हि	निश्चय ही
मेधावी	बुद्धिमान / विवेकी
न	नहीं
ताम्	उस (प्रकार की)
वाचम्	वाणी / बात
उदीरयेत्	बोले / प्रकट करे / कहे

भावार्थ

इस श्लोक में कामन्दक सबसे गहन नैतिक सीमा खींचते हैं-जिस वाणी से लोगों को इतनी अधिक पीड़ा हो मानो उनके हृदय में तीर चुभ गया हो, उस वाणी को **स्वयं पीड़ित होकर भी** एक बुद्धिमान व्यक्ति कभी नहीं बोलता। अर्थात, चाहे दूसरों ने आपके साथ कितना ही अन्याय किया हो, आप अपनी वाचा को उस स्तर तक गिरने न दें कि वह सामने वाले के मर्म को भेद दे। यहाँ 'मेधावी' (प्रज्ञावान) की विशेषता

केवल ज्ञान नहीं, बल्कि **'भावनात्मक संयम' (Restraint)** है। प्रतिशोध की भावना में मनुष्य अक्सर करुणा-शून्य हो जाता है, परन्तु विवेकी जानता है कि वचन-बाण कभी वापस नहीं लौटते। हृदय-वेधी वाणी न केवल दूसरे को चोट पहुँचाती है, बल्कि बोलने वाले की आत्मा को भी संकीर्ण बना देती है। यह श्लोक 'क्षमा' और 'संयम' को व्यावहारिक बुद्धिमत्ता मानता है-क्योंकि ऐसा शब्द जो सामने वाले को मानसिक आघात (Trauma) दे, वह किसी भी न्याय-युद्ध का उचित अस्त्र नहीं है।

दार्शनिक विवेचन

यह श्लोक **'अहिंसा'** के सबसे सूक्ष्म स्तर (मानसिक अहिंसा) को उद्घाटित करता है। महाभारत में 'वाचा' को 'शस्त्र' (हथियार) कहा गया है-'वाग्वज्रः'। यहाँ 'हृदि विद्ध' का रूपक अत्यंत मार्मिक है; शारीरिक घाव भर जाता है, पर मानसिक वचन-घाव पीढ़ियों तक रहता है।

कामन्दक **'पीडितोऽपि'** कहकर **'स्वयं की पीड़ा को न्यायोचित बहाना'** नहीं बनने देते। यह कांट के 'काल्पनिक अनिवार्य आदेश' (Categorical Imperative) से मेल खाता है-दूसरों के साथ वैसा व्यवहार न करें, जैसा आप स्वयं नहीं चाहेंगे। गाँधीजी का 'अहिंसा' सिद्धान्त भी यही कहता है कि शत्रु को भी अपमानजनक शब्द न कहें। अस्तित्ववादी दार्शनिक सार्त्र के अनुसार, शब्द दूसरे की 'चेतना' को वस्तु बना देते हैं; यहाँ उस वाणी को रोकना व्यक्ति की **'चेतना की स्वतंत्रता'** को बचाना है। अतः यह न केवल नीति है, वरन् **'आत्म-शुद्धि' (Self-Purification)** की साधना है-जो दूसरे को जलाता है, वह स्वयं उस अग्नि में जलता है।

आधुनिक संदर्भ

आज का युग **'मानसिक स्वास्थ्य' (Mental Health)** का युग है। साइबर बुलिंग, सोशल मीडिया ट्रोलिंग, और पारिवारिक वाक्-दुर्व्यवहार (Verbal Abuse) लाखों लोगों में अवसाद, चिन्ता और आत्महत्या तक का कारण बन रहे हैं। यह श्लोक वकीलों, पुलिस अधिकारियों, और न्यायाधीशों के लिए भी महत्वपूर्ण है-'पीड़ित होने का अधिकार' उन्हें नहीं देता कि वे पूछताछ या फैसले में मानसिक यातना दें। 'मेधावी' आज का **'मानसिक रूप से परिपक्व व्यक्ति' (Emotionally Mature Individual)** है, जो गैसलाइटिंग या अपमानजनक भाषा से बचता है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में, राष्ट्राध्यक्षों के बीच की कटु वाणी (जैसे अमेरिका-उत्तर कोरिया के बीच 'फायर एंड फ्यूरी' वाले शब्द) तनाव बढ़ाती है, जबकि शांति वार्ता में 'डिप्लोमैटिक टोन' ही काम करता है। इसके अलावा, **अभिभावक-बालक** सम्बन्धों में भी माता-पिता यदि गुस्से में बच्चे के 'हृदय-वेधी' शब्द बोलते हैं, तो वे आजीवन जटिलताएँ (Complexes) पैदा करते हैं। यह श्लोक हमें सिखाता है कि **'स्वयं के दुख' को दूसरे पर प्रक्षेपित करना बुद्धिमत्ता नहीं, बल्कि दुर्बलता है**।

तीव्राण्य् उद्वेगकारीणि विसृष्टान्य् अशमात्मकैः ।

कृन्तन्ति देहिनां मर्म शस्त्राणीव वचांसि च ॥२५॥

IAST

tīvrāṇy udvegakāriṇi visṛṣṭāny aśamātmakaiḥ |

kṛntanti dehināṃ marma śastrāṇīva vacāṃsi ca ||25||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
तीव्राणि	तीव्र / बहुत कठोर / उग्र
उद्वेगकारीणि	उद्वेग (उत्तेजना / घबराहट / संताप) उत्पन्न करने वाले
विसृष्टानि	छोड़े गए / उच्चारित किए गए
अशमात्मकैः	अशान्त चित्त वाले / संयमहीन / क्रोधी मनुष्यों द्वारा
कृन्तन्ति	काटते हैं / छेद करते हैं / विदीर्ण करते हैं
देहिनाम्	प्राणियों / शरीरधारियों के
मर्म	मर्मस्थल / जीवन के संवेदनशील स्थान (हृदय, मस्तिष्क आदि की गहरी संवेदना)
शस्त्राणि	हथियार / शस्त्र
इव	के समान
वचांसि	वचन / बातें
च	और (तुलना के लिए)

भावार्थ

कामन्दक इस श्लोक में **'वाणी को शस्त्र'** घोषित करते हैं। जो लोग स्वयं अशान्त, असंयमी और क्रोधित (अशमात्मक) होते हैं, वे जो भी तीव्र, उग्र और उद्विग्न करने वाले वचन बोलते हैं, वे वचन शारीरिक शस्त्रों (तलवार, भाले, बाण) की भाँति प्राणियों के **'मर्म'** (छिपे हुए संवेदनशील तन्तु, भावनात्मक स्थल) को काट डालते हैं। शारीरिक शस्त्र से केवल शरीर पीड़ित होता है, किन्तु वाणि-शस्त्र मन, बुद्धि, अहंकार और भावनाओं के गहरे मूल (मर्म) को नष्ट कर देता है। 'अशमात्मक' शब्द विशेष रूप से गहन है-जिसने अपने मन को 'शम' (दमन/संयम) द्वारा वश में नहीं किया, वह स्वयं भी अन्दर से जल रहा है और अपनी ज्वाला से दूसरों को झुलसा देता है। अतः यह आवश्यक नहीं कि दुर्जन ही कटु बोले; एक सामान्य व्यक्ति भी क्षणिक क्रोध में मर्मभेदी बाण चला सकता है, जिसका प्रतिकार असंभव होता है।

दार्शनिक विवेचन

यह श्लोक भारतीय **'मर्म-विज्ञान'** को वाक्-शास्त्र से जोड़ता है। आयुर्वेद और शल्य-चिकित्सा में 'मर्म' वे स्थान हैं जहाँ प्राण, स्नायु, सिराएँ मिलती हैं; इन पर आघात लगते ही मृत्यु या पक्षाघात होता है। कामन्दक मानते हैं कि मानव के **'भावनात्मक मर्म'** (Self-respect, Love, Trust, Faith) उसी प्रकार संवेदनशील हैं। यहाँ **'शस्त्राणीव'** की उपमा बताती है कि वचन कम शक्तिशाली नहीं, बल्कि अधिक शक्तिशाली हैं-क्योंकि तलवार तो सामने रखी होती है, किन्तु वचन पीठ पीछे भी मार सकते हैं। दार्शनिक रूप से, यह **'संस्कार-वाद'** को स्पर्श करता है-शब्द मन में संस्कार (अचेतन छाप) छोड़ते हैं, जो पीढ़ियों तक बने रहते हैं। हर्बर्ट मार्क्यूज़ की 'रिप्रेसिव टॉलरेंस' की अवधारणा भी कहती है कि भाषा ही सामाजिक

नियंत्रण का सबसे गहरा औज़ार है। इसलिए 'अशमात्मक' (आत्म-अनुशासनहीन) व्यक्ति का वचन उसकी स्वयं की **'अज्ञानता'** को प्रकट करता है, क्योंकि जो स्वयं को नहीं जानता, वह दूसरे का मर्म समझ ही नहीं सकता। सच्चा ज्ञानी मौन या मधुरता का ही सहारा लेता है।

आधुनिक संदर्भ

आज के डिजिटल युग में **'वचांसि' (शब्द)** पहले से कहीं अधिक शक्तिशाली हो गए हैं। एक ट्वीट, एक फेसबुक पोस्ट, या एक व्हाट्सएप मैसेज विश्वभर में वायरल होकर लाखों लोगों के मर्म को भेद सकता है। **'साइबर-बुलिंग'** और **'ऑनलाइन हेट स्पीच'** शारीरिक हमले से भी अधिक मानसिक क्षति पहुँचाते हैं-कई किशोरों ने इस कारण आत्महत्या की है। यह श्लोक हमें **'भाषण-स्वतंत्रता' (Freedom of Speech)** की सीमा का बोध कराता है-स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं कि दूसरे के मर्म को काटा जाए। मीडिया और पत्रकारिता में **'एथिकल कोड'** (पत्राचार-नीति) इसी पर आधारित है। इसके अतिरिक्त, कानूनी क्षेत्र में 'मानसिक उत्पीड़न' (Mental Harassment) को अपराध की श्रेणी में लाया गया है। नेताओं के भाषणों का विश्लेषण करते समय यह देखा जाता है कि कहीं वे किसी समुदाय के 'मर्म' (धार्मिक भावनाएँ, गरिमा) को तो नहीं आहत कर रहे। पारिवारिक चिकित्सा (Family Therapy) में 'Non-Violent Communication' (मार्शल रोसेनबर्ग) की तकनीक यही सिखाती है-तीव्र शब्दों (You-messages) की बजाय 'I-feel' वाले मधुर शब्द बोलें। अतः आज का शासक, नेता, पति-पत्नी, माता-पिता-सभी को यह समझना होगा कि **उनका वचन ही उनकी सबसे बड़ी ताकत या सबसे बड़ी कमज़ोरी है**।

प्रियम् एवाभिधातव्यं सत्सु नित्यं द्विषत्सु च ।

शिखीव केकामधुरः प्रियवाक् कस्य न प्रियः ॥२६॥

IAST

priyam evābhidhātavyaṃ satsu nityaṃ dviṣatsu ca |

śikhīva kekāmadhuraḥ priyavāk kasya na priyaḥ ||26||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
प्रियम्	मधुर, स्नेहपूर्ण एवं कल्याणकारी वचन
एव	ही (निश्चय ही)
अभिधातव्यम्	बोलना चाहिए / कहना योग्य है
सत्सु	सज्जनों / मित्रों / गुणी जनों के प्रति
नित्यम्	सदा / हमेशा

द्विषत्सु	शत्रुओं / द्वेष रखने वालों के प्रति
च	और (भी)
शिखी	मोर (शिखाधारी)
इव	के समान / जैसे
केकामधुरः	केकानाद (मोर की अवाज़) में मधुर
प्रियवाक्	मधुरभाषी / प्रिय वचन बोलने वाला
कस्य	किसका (किसके लिये)
न	नहीं
प्रियः	प्रिय / प्यारा

भावार्थ

कामन्दक स्पष्ट आदेश देते हैं कि **सज्जनों के साथ ही नहीं, अपितु शत्रुओं के साथ भी सदैव 'प्रिय' (मधुर, शिष्ट एवं अहितकर) वचन** ही बोलने चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि वाणी कभी भी कटु, अपमानजनक या उत्तेजक न हो। उदाहरण के रूप में वे मोर (शिखी) की केकाध्वनि देते हैं-जो अपनी मादक मधुरता से सबका ध्यान आकर्षित करती है, पर किसी को चोट नहीं पहुँचाती। इसी प्रकार जो मनुष्य 'प्रियवाक्' (मधुरभाषी) है, उसे कोई भी अप्रिय नहीं मान सकता; वह सबका प्रिय पात्र बन जाता है। ध्यान दें-'प्रिय' का अर्थ यहाँ झूठी चापलूसी नहीं, बल्कि **'हितोपयोगी सौजन्य'** (पालिश्ड डिप्लोमेसी) है। शत्रु के प्रति भी मधुरता बरतने से वैर-भावना स्वतः शांत होती है, क्योंकि कठोर शब्द ही संघर्ष को आग लगाते हैं। यह श्लोक बताता है कि सच्चा शूरवीर वह नहीं जो शत्रु को गाली दे, बल्कि वह जो कटु परिस्थिति में भी अपनी वाणी की मर्यादा न खोए।

दार्शनिक विवेचन

यह श्लोक **'वाक्-अहिंसा'** और **'उपाय-कौशल'** (Skillful Means) का अद्भुत संगम है। भारतीय दर्शन में 'सत्य' की अपेक्षा 'प्रिय' पर यहाँ अधिक बल दिया गया है; क्योंकि मनुस्मृति के अनुसार 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्'-सत्य भी प्रिय होना चाहिए। परन्तु यहाँ तो शत्रु के साथ भी प्रिय बोलने का आदेश है, जो **'क्षत्र-धर्म'** को मानवीय आयाम देता है। यह **'सार्वभौमिक प्रेम' (Universal Love)** का संकीर्ण राजनीतिक रूप नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक सत्य है-शत्रु का द्वेष उसके अपमान से बढ़ता है, और मधुर वाणी उस द्वेष की आग पर पानी का काम करती है। पातंजल योग में 'मैत्री' और 'करुणा' को चित्त-वृत्ति-निरोध का साधन बताया गया; इसी को कामन्दक ने राज-धर्म में अनुवादित किया है। फ्रायड के 'रिप्रेशन' सिद्धान्त से तुलना होती है-यदि शत्रु को दबाकर अपमानित किया जाए, तो वह विस्फोट करता है, पर मधुरता उसके अहंकार (Ego) को बचाकर सौहार्द का द्वार खोलती है।

आधुनिक संदर्भ

आज की 'डिजिटल डिप्लोमेसी' और 'कॉर्पोरेट मैनेजमेंट' में यह श्लोक अनिवार्य है। राजनीतिक क्षेत्र में विपक्षी दलों के नेताओं को भी 'प्रियवाक्' बनना चाहिए-संसद में की गई गरिमामयी चर्चा (Parliamentary Decorum) इसी पर टिकी है। अमेरिका-रूस या भारत-पाकिस्तान जैसे द्वेषी संबंधों में भी बातचीत की टोन (Tone) शिष्टाचारपूर्ण रखी जाती है, नहीं तो युद्ध छिड़ सकता है। सोशल मीडिया पर जहाँ लोग सीधे-सीधे विपक्षी विचारधारा वालों को ट्रोल करते हैं, वहाँ यह श्लोक चेतावनी देता है कि **'प्रियवाक्'** ही सबसे अच्छा 'ब्रांड एंबेसडर' बनता है। कार्यस्थल पर ग्राहक सेवा (Customer Service) में क्रोधित ग्राहक के साथ मीठी भाषा में बात करना 'प्रियाभिधान' का व्यावहारिक रूप है। अतः शिक्षा के क्षेत्र में बच्चों को यही सिखाना चाहिए कि शत्रु भी यदि हो तो उसे अपनी वाणी से जीतो, न कि तलवार से-यही आधुनिक भारतीय शिक्षा-नीति (NEP 2020) में नैतिकता का आधार हो सकता है।

अलङ्क्रियन्ते शिखिनः केकया मदरक्तया ।

वाचा विपश्चितोऽत्यर्थं माधुर्यगुणयुक्तया ॥२७॥

IAST –

alaṅkriyante śikhinaḥ kekayā madaraktayā |
vācā vipaścito 'tyarthaṃ mādhuryaguṇayuktayā ||27||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
अलङ्क्रियन्ते	सुशोभित / अलंकृत / सजे हुए होते हैं
शिखिनः	मोर (शिखा वाले पक्षी)
केकया	केकानाद (मोर की मधुर बोली / कूक) से
मदरक्तया	मद-रक्त (मत्त / मोहक एवं गहरी वर्णयुक्त) अवाज़ से (अथवा मद से पीली गर्दन वाली केक से)
वाचा	वाणी / भाषण / बोली द्वारा
विपश्चितः	विद्वान / प्रज्ञावान / बुद्धिमान व्यक्ति
अत्यर्थम्	अत्यन्त / बहुत अधिक
माधुर्यगुणयुक्तया	माधुर्य (मिठास, लालित्य, सौम्यता) गुण से युक्त वाणी से

भावार्थ

जिस प्रकार मोर अपनी मोहक, रक्त-वर्णी एवं मादक केकाध्वनि से (या अपनी मद-रक्त ग्रीवा से युक्त होकर प्रकृति में) अलंकृत प्रतीत होते हैं, ठीक उसी प्रकार **बुद्धिमान विद्वान पुरुष अपनी मधुरता-गुण से युक्त वाणी के कारण अत्यधिक सुशोभित होते हैं**। कामन्दक कहते हैं कि वाणी ही विद्वान का सच्चा अलंकार (आभूषण) है-मुकुट, कुण्डल या वस्त्र नहीं। मोर की केका वर्षा-ऋतु में सबको आनन्दित करती है; इसी प्रकार मधुर वाणी किसी भी अवसर पर श्रोताओं के हृदय को स्पर्श करती है, चाहे वह सभा हो, राज-दरबार हो या सामान्य जन-समूह। 'माधुर्यगुण' केवल कोमल शब्द नहीं, बल्कि वाणी की **'प्रसन्नता, सरलता, संवेदना और आत्मीयता'** है। जो विद्वान अपनी वाणी को मीठा रखता है, उसकी विद्वत्ता कई गुणा बढ़ जाती है-क्योंकि लोग उसकी बातें सुनना चाहते हैं। यह श्लोक यही बताता है कि बिना माधुर्य के ज्ञान 'बोझिल' है, और माधुर्य के साथ वह 'आकर्षक' बन जाता है।

दार्शनिक विवेचन

यहाँ 'अलंक्रियन्ते' (शोभा) का दार्शनिक अत्यन्त गहरा प्रयोग है। भारतीय सौंदर्यशास्त्र (अलंकारशास्त्र) में 'वाक्-अलंकार' को ही प्रधानता दी गई है-चाहे वह साहित्य हो या राजनीति। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में 'वाचिक' अभिनय को चार प्रकार के अभिनयों में प्रमुख बताया गया है। कामन्दक ने 'माधुर्यगुण' को विद्वता का **'आभ्यन्तरिक आभूषण'** (Inner Ornament) घोषित किया है। यह हेगेल के 'स्पिरिट' (Spirit) की उस अवधारणा से मेल खाता है, जहाँ बाहरी आडम्बर (Maya) से अधिक आन्तरिक सौन्दर्य महत्वपूर्ण है। वैसे तो 'शिखिनः' (मोर) का प्राकृतिक सौन्दर्य (रंग-बिरंगे पंख) दिखता है, परन्तु कामन्दक विशेष रूप से उसकी **'ध्वनि' (केका)** को अलंकार मानते हैं-यह बताता है कि दिखावे से बढ़कर माधुर्य (श्रव्यगुण) है। साथ ही, 'विपश्चितः' (विद्वान) का ज्ञान तभी समाज में फलित होता है जब वह 'माधुर्य-युक्त' हो; अन्यथा वह शुष्क एवं अग्राह्य हो जाता है। यह नीतिशास्त्र को **'संप्रेषण-शास्त्र' (Communication Ethics)** में परिवर्तित कर देता है।

आधुनिक संदर्भ

वर्तमान युग 'पर्सनल ब्रांडिंग' और 'सॉफ्ट स्किल्स' का है। शिक्षा, व्यवसाय और राजनीति-तीनों क्षेत्रों में **'संचार-कौशल' (Communication Skills)** किसी भी डिग्री या पोशाक से अधिक मूल्यवान हो गया है। TED Talks, यूट्यूब चैनल, पॉडकास्ट-जहाँ वक्ता 'माधुर्यगुणयुक्त वाचा' का प्रयोग करता है, वहाँ दर्शकों की संख्या और प्रभाव दोनों बढ़ते हैं। आधुनिक मनोविज्ञान भी कहता है कि **'Emotional Intelligence'** का पहला सूत्र है-दूसरों से बोलने का तरीका। कॉर्पोरेट जगत में 'अपेक्षाकृत कम योग्य परन्तु मधुरभाषी प्रबंधक' अधिक योग्य परन्तु कर्कश प्रबंधक से अधिक सफल होता है-यही इस श्लोक का मूर्त प्रमाण है। शिक्षकों के लिए भी 'माधुर्य' अनिवार्य है-एक मीठा बोलने वाला अध्यापक कठिन विषय भी रुचिकर बना देता है। इसके अलावा, सोशल मीडिया इन्फ्लुएंसर्स (Influencers) अपनी 'वॉइस टोन' को ही अपनी सबसे बड़ी पूँजी मानते हैं। अतः 'विपश्चित' (विद्वान) का आज का रूप वही है, जो अपनी विद्वता को मीठी भाषा में प्रस्तुत कर जनमानस को अपनी ओर आकर्षित करता है।

मदरक्तस्य हंसस्य कोकिलस्य शिखण्डिनः ।

हरन्ति न तथा वाचो यथा साधु विपश्चितः ॥२८॥

IAST

madaraktasya haṃsasya kokilasya śikhaṇḍinaḥ |

haranti na tathā vāco yathā sādhu vipaścitaḥ ||28||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
मदरक्तस्य	मोहक रक्त-वर्ण वाले / मदमत्त गर्दन वाले
हंसस्य	हंस (स्वान/हंस) के
कोकिलस्य	कोयल के
शिखण्डिनः	मोर (शिखंड/चोटी वाले) के
हरन्ति	हरण करते हैं / मन को आकर्षित/मोहित करते हैं
न	नहीं
तथा	उस प्रकार / उतना
वाचः	वाणियाँ / ध्वनियाँ / बोलियाँ
यथा	जिस प्रकार / जितना
साधु	सज्जन / श्रेष्ठ / सदाचारी
विपश्चितः	विद्वान / प्रज्ञावान व्यक्ति की (वाणी)

भावार्थ

कामन्दक एक अत्यंत प्रभावशाली तुलना प्रस्तुत करते हैं-प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ मधुर ध्वनियाँ भी, जैसे हंस का कलरव, कोयल की मीठी कूक, और मोर की मादक केका, सुनने में अत्यधिक प्रिय हैं; परन्तु **वे मनुष्य के मन को उस प्रकार नहीं हर पातीं, जिस प्रकार एक सज्जन-विद्वान (साधु विपश्चित) की सार्थक, मधुर एवं बुद्धिमत्तापूर्ण वाणी हर लेती है**। यहाँ 'हरन्ति' का अर्थ 'आकर्षित करना' (चित्तहरण) है। पक्षियों की बोली में केवल ध्वनि-सौन्दर्य है, किंतु विद्वान की वाणी में **'अर्थ'** (गहन विचार), **'नीति'** (व्यवहार-शिक्षा) और **'करुणा'** (संवेदना) का सम्मिलित स्वरूप होता है, जो मात्र श्रवण-सुख न देकर बुद्धि और हृदय की गहराई तक उतरता है। इसलिए यद्यपि प्रकृति की ध्वनियाँ अपूर्व हैं, फिर भी मानव-वाणी (जब वह साधुता एवं विद्वता से युक्त हो) उनसे कहीं अधिक प्रभावशाली है।

दार्शनिक विवेचन

यह श्लोक **'प्रकृति' (Nature) और 'संस्कृति' (Culture)** अथवा **'जीव-ध्वनि' (Animal Sound) और 'मानव-वाक्' (Human Speech)** का दार्शनिक विभेद बताता है। हंस, कोकिल और मोर की ध्वनियाँ 'प्राकृतिक' (जन्मजात/आनुवांशिक) हैं, जिनका कोई आशय (Intention/Intelligence) नहीं होता। जबकि 'साधु विपश्चित' की वाचा 'बौद्धिक एवं नैतिक' होती है-उसमें **'चेतना' (Consciousness)** का प्रकाश होता है। भारतीय दर्शन में 'वाक्' को ब्रह्म-स्वरूप (शब्दब्रह्म) कहा गया है; जबकि पशु-ध्वनि मात्र 'शब्द' है, 'ब्रह्म' नहीं। यह **'हेर्मेनेयुटिक्स' (Interpretation Theory)** से भी जुड़ता है-मानव-वाणी का अर्थ निहित होता है, जो श्रोता को चिन्तन और क्रिया के लिए प्रेरित करता है। सुकरात ने 'वाक्-तर्क' (Logos) को मनुष्य की विशिष्टता बताया था; कामन्दक उसी 'लोगोस' को 'साधुता' (नैतिकता) और 'विपश्चिता' (बुद्धि) से युक्त करके उसे परम आकर्षण का स्रोत मानते हैं। प्राकृतिक ध्वनियाँ चित्त को विश्राम देती हैं, किन्तु विद्वान-वाणी **'आत्म-निर्माण' (Self-actualization)** का मार्ग प्रशस्त करती है।

आधुनिक संदर्भ

आज के 'मीडिया-संतृप्त' (Media-saturated) युग में असंख्य ध्वनियाँ, ASMR, प्राकृतिक संगीत, AI-जनित आवाज़ें उपलब्ध हैं, फिर भी **'सार्थक मानव-संवाद' (Meaningful Human Interaction)** का कोई विकल्प नहीं है। एक शिक्षक का प्रेरणादायक प्रवचन, एक नेता का आश्वासन भरा संबोधन, या एक मित्र की संवेदनशील बात-इन सबका जादू किसी प्राकृतिक ध्वनि से अधिक गहरा होता है। यही कारण है कि पॉडकास्ट, TEDx और मोटिवेशनल स्पीच का बाज़ार फल-फूल रहा है। इसके विपरीत, AI-जनित आवाज़ों (जैसे Siri, Alexa) में माधुर्य तो है, पर 'अर्थ' का अभाव उन्हें यांत्रिक बनाता है। आधुनिक मनोचिकित्सा (Psychotherapy) में 'वार्तालाप-चिकित्सा' (Talk Therapy) को सबसे प्रभावी माना जाता है-जो इस श्लोक की पुष्टि करती है कि विद्वान/सज्जन की सार्थक वाणी मानसिक आघात भी ठीक कर सकती है। राजनीति में, एक 'साधु विपश्चित' नेता (जैसे नेल्सन मंडेला) की वाणी ने पूरी जातियों को एक किया, जबकि पक्षियों की कूक सीमित सुख देती है। अतः इस श्लोक का आधुनिक सन्देश है-प्रौद्योगिकी के युग में मानवीय वाणी की गरिमा, सत्यता और माधुर्य ही हमारी सबसे बड़ी सामाजिक पूँजी है; इसे संरक्षित करना ही सभ्यता का कर्तव्य है।

गुणानुरागी स्थितिमाञ् छ्रद्दधानो दयान्वितः ।

धनं धर्माय विसृजेत् प्रियां वाचम् उदीरयन् ॥२९॥

IAST

guṇānurāgī sthitimāñ chraddadhāno dayānvitaḥ |

dhanaṃ dharmāya visṛjet priyāṃ vācam udīrayan ||29||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
गुणानुरागी	गुणों / सद्गुणों में अनुराग (प्रेम) रखने वाला
स्थितिमान्	स्थिर-बुद्धि / धैर्यशील / संयत मन वाला
श्रद्दधानः	श्रद्धा से युक्त / विश्वासी
दयान्वितः	दया / करुणा से सहित
धनम्	धन / सम्पत्ति
धर्माय	धर्म के निमित्त / पुण्य-कर्मों के लिए
विसृजेत्	त्यागे / दान करे / लगाए
प्रियाम्	प्रिय / मधुर / स्नेहपूर्ण
वाचम्	वाणी / बातचीत
उदीरयन्	उच्चारण करता हुआ / बोलता हुआ

भावार्थ

इस श्लोक में कामन्दक एक आदर्श धनी व्यक्ति के चारित्रिक गुणों का चित्रण करते हैं। वह व्यक्ति जो स्वयं गुणों से प्रेम करता है, मन-वचन में स्थिरता रखता है, ईश्वर-धर्म में श्रद्धा रखता है और प्रत्येक प्राणी के प्रति दयालु है-उसे अपने संचित धन को केवल भोग-विलास में नहीं, बल्कि **धर्म के कार्यों** (यज्ञ, दान, विद्यादान, अन्नदान, सद्कार्य) में व्यय करना चाहिए। परन्तु यह ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है कि वह दान करते समय **'प्रियां वाचम् उदीरयन्'** अर्थात मधुर एवं स्नेहपूर्ण वाणी बोलता रहे। दान देते समय यदि कठोर, घृणित या घमण्ड भरी भाषा बोली जाए तो वह दान अधर्म बन जाता है। इस प्रकार, यह श्लोक **'उच्चार-पूर्वक दान' (दान के साथ मधुर वचन)** को अनिवार्य करता है। धन-दान का उद्देश्य पुण्य-लोभ नहीं, अपितु कर्तव्य-बुद्धि (धर्म) और करुणा है; और यह करुणा यदि शब्दों में न झलके, तो वह अधूरी है।

दार्शनिक विवेचन

यह श्लोक भारतीय दर्शन के **'त्रिविध तप' (मनः, वाचा, काया)** को धन-विनियोग से जोड़ता है। गीता (अध्याय १७) में 'दान-तप' का वर्णन है-सात्त्विक दान वह है जो 'देशे काले च पात्रे च' (सही स्थान, समय और पात्र को) दिया जाए, और 'अनुपकारिणे' (बिना प्रत्याशा के) हो। कामन्दक इसके दार्शनिक स्तर को और ऊँचा उठाते हैं-**'प्रियां वाचम्'** को 'वाचिक-तप' (वाणी का संयम) का अंग बनाते हैं। अद्वैत वेदान्त के अनुसार, यह देने वाले के अहंकार ('मैं बड़ा हूँ') को तोड़ने का उपाय है। जब दाता मधुर वाणी बोलता है, तो वह याचक को नीचा नहीं समझता, बल्कि उसमें विभूमन (ईश्वर का अंश) देखता है। **'गुणानुरागी'** होना यह सिद्ध करता है कि उसकी आत्मा 'रज' और 'तम' गुणों से मुक्त होकर 'सत्त्व'

गुण में स्थित है। 'स्थितिमान्' (स्थिरता) योगदर्शन के 'धृति' (धैर्य) का सूचक है-जो धन पाकर भी विचलित न हो, वही सच्चा दाता है। यह प्लेटो के 'न्याय-पुरुष' (Just Man) के सामान है, जहाँ आत्मा के तीनों भाग (इच्छा, साहस, तर्क) सामंजस्य में होते हैं।

आधुनिक संदर्भ

आज के कॉर्पोरेट और परोपकारी (Philanthropy) क्षेत्र में यह श्लोक अत्यन्त प्रासंगिक है। बड़े उद्योगपति और हस्तियाँ **CSR (Corporate Social Responsibility)** के तहत करोड़ों रुपये दान करते हैं, किन्तु कई बार उनका व्यवहार प्राप्तकर्ताओं (गरीबों, एनजीओ) के प्रति अहंकारपूर्ण होता है, जिससे दान की पवित्रता नष्ट हो जाती है। आधुनिक मनोविज्ञान भी कहता है कि **'प्रभावी परोपकार' (Effective Altruism)** में न केवल भौतिक सहायता, बल्कि 'मर्यादापूर्ण संवाद' (Dignified Communication) शामिल है। जब किसी भूखे को भोजन देते समय उसे अपमानित किया जाता है, तो वह भोजन 'अमृत' न होकर 'विष' बन जाता है। सरकारी कल्याण योजनाएँ (जैसे PMGKY) तो धन देती हैं, परन्तु यदि अधिकारियों की कटु वाणी के कारण लोग अपमानित होते हैं, तो योजना का लाभ आधा रह जाता है। अतः इस श्लोक का व्यावहारिक सन्देश यह है-**'देने की कला'** में 'मधुर बोलना' भी उतना ही दान है जितना स्वयं वस्तु-दान। यही 'सेवा' और 'प्रशासन' का भेद है।

ये प्रियाणि च भाषन्ते प्रयच्छन्ति च सत्कृतिम् ।

श्रीमन्तो वन्द्यचरणा देवास् ते नरविग्रहाः ॥३०॥

IAST

ye priyāṇi ca bhāṣante prayacchanti ca satkṛtim |

śrīmanto vandyacaraṇā devās te naravigrahāḥ ||30||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
ये	जो (मनुष्य)
प्रियाणि	प्रिय / मधुर / सुखद वचन
च	और
भाषन्ते	बोलते हैं / कहते हैं
प्रयच्छन्ति	प्रदान करते हैं / देते हैं
च	और भी
सत्कृतिम्	सत्कार / सम्मान / आदर-सत्कार
श्रीमन्तः	श्री (लक्ष्मी) से युक्त / धन-वैभवसम्पन्न

वन्द्यचरणाः	जिनके चरण वन्दनीय / पूजनीय हैं
देवाः	देवता (प्रत्यक्ष स्वर्गीय शक्तियाँ)
ते	वे ही
नरविग्रहाः	मनुष्य-शरीर (विग्रह) धारण किए हुए (अर्थात मनुष्य रूपी देवता)

भावार्थ

यह श्लोक उन व्यक्तियों की **'दिव्य उपमा'** देता है जो अपने जीवन में दो विशेष कार्य करते हैं-**(१) प्रिय (मधुर/कल्याणकारी) वचन बोलना** और **(२) सत्कृति (सम्मान एवं आदर) देना**। कामन्दक कहते हैं कि ऐसे लोग, यद्यपि मनुष्य-शरीर में हैं, तथापि वे **'देवता'** से कम नहीं हैं। वे लक्ष्मी (श्री) से सम्पन्न होते हैं-अर्थात वे सांसारिक एवं आध्यात्मिक सम्पन्नता दोनों प्राप्त करते हैं। संसार में व्यक्ति का महत्त्व उसके धन या पद से नहीं, बल्कि उसकी **'वाणी की मधुरता' और 'दूसरों को सम्मान देने की क्षमता'** से निर्धारित होता है। जो व्यक्ति प्रशंसा, आदर, स्नेह-पूर्ण व्यवहार देता है, उसके पैर भी सबके द्वारा प्रणाम किए जाते हैं ('वन्द्यचरणाः')। यह एक सामाजिक-मनोवैज्ञानिक सत्य है-जो दूसरों की गरिमा बढ़ाता है, उसकी गरिमा स्वयं अनायास ही बढ़ जाती है। यह श्लोक मानव-मूल्यों को देवत्व का आधार बनाता है।

दार्शनिक विवेचन

इस श्लोक में **'नरविग्रहा देवाः' (मनुष्य-शरीरी देवता)** की अवधारणा अद्वितीय है। यह **'मानवतावाद' (Humanism)** का प्राचीन भारतीय रूप है। उपनिषदों में 'देव' शब्द 'दिव' धातु से बना है-'जो प्रकाशित/चमकता है'। कामन्दक कहते हैं कि असली देवत्व 'प्रिय-वचन' और 'सत्कार-दान' में प्रकट होता है। जैसे देवता अपने भक्तों पर कृपा करते हैं, वैसे ही ये लोग अपने वचन और आदर से सबका उत्थान करते हैं। यह **'भक्ति-मार्ग'** का सामाजिक विस्तार है-ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए स्तुति (प्रिय वचन) और पूजा (सत्कृति) की जाती है, किन्तु इसे मनुष्यों के प्रति अपनाने से समाज ही स्वर्ग बन जाता है। सुकरात का यह कथन कि 'ज्ञान ही गुण है'-यहाँ 'प्रिय वाणी और सत्कार' को ज्ञान और आत्म-जागरूकता का प्रतीक माना गया है। यह दर्शन राजनीति से आगे बढ़कर **'चरित्र-शास्त्र' (Character Ethics)** बन जाता है, जहाँ मनुष्य अपने व्यवहार (वाचा और दान) से अपनी 'श्री' (लक्ष्मी, आभा) स्वयं बनाता है। यह 'श्रीमन्तः' शब्द भौतिक धन तक सीमित नहीं, बल्कि आध्यात्मिक ओज (Tejas) को दर्शाता है।

आधुनिक संदर्भ

आधुनिक युग में, जहाँ **'सोशल मीडिया'** ने वाणी को असीमित कर दिया है, वहीं 'प्रिय भाषा' का मूल्य और भी बढ़ गया है। जो लोग सोशल प्लेटफार्मों पर दूसरों को प्रोत्साहित करने वाली टिप्पणी (प्रिय वचन) करते हैं और दूसरों की उपलब्धियों को सराहते हैं (सत्कृति), वे स्वयं 'इन्फ्लुएंसर' और आदर्श बन जाते हैं। **'ग्राहक-सेवा' (Customer Relationship Management - CRM)** का मूल मंत्र भी यही है-ग्राहक को सम्मान देना और मीठा बोलना ही उसे स्थायी बनाता है। कार्यस्थल पर, जो मैनेजर अपनी टीम को 'प्रिय' और 'सत्कृत' करता है, वहीं उच्च उत्पादकता (Productivity) प्राप्त करता है-इसे **'Psychological Safety'** कहते हैं। इसके विपरीत, आधुनिक राजनीति में अक्सर कटु-वाक्यों

और अपमान की होड़ मची रहती है, जो नेताओं को 'श्रीमन्त' न बनाकर 'अश्रीमन्त' बना देती है। यह श्लोक कहता है कि सच्चा नेतृत्व, चाहे वह घर का हो या राष्ट्र का, **'सम्मान-संस्कृति' (Respect Culture)** पर ही टिका होता है-जो आज की 'टॉक्सिक वर्कप्लेस' और 'टॉक्सिक पॉलिटिक्स' के लिए सबसे कारगर विषैली दवा है।

आचार-संहिता

शुचिर् आस्तिक्यपूतात्मा पूजयेद् देवताः सदा ।

देवतावद् गुरुजनम् आत्मवच् च सुहृज्जनम् ॥३१॥

IAST

śucir āstikyapūtātmā pūjayed devatāḥ sadā |

devatāvad gurujanam ātmavac ca suhṛjjanam ||31||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
शुचिः	पवित्र / स्वच्छ (बाह्य एवं आन्तरिक शुद्धि युक्त)
आस्तिक्यपूतात्मा	आस्तिक्य (ईश्वर, वेद, परलोक में श्रद्धा) से पवित्र किया हुआ अन्तःकरण (आत्मा/मन)
पूजयेत्	पूजा / आराधना करे
देवताः	देवी-देवताओं को
सदा	सदैव / नित्य
देवतावत्	देवताओं के समान (तुल्य)
गुरुजनम्	गुरु / शिक्षक / वृद्ध / आचार्य / माता-पिता
आत्मवत्	अपनी आत्मा / स्वयं के समान
च	और
सुहृज्जनम्	सुहृद / मित्र / हितैषी / सज्जन

भावार्थ

यह श्लोक एक आदर्श सज्जन के दैनिक **'पूजा-पद्धति'** और **'सामाजिक संबंधों'** के तीन सोपान बताता है।

(१) जो मनुष्य बाह्य-स्नान आदि से शुचि (पवित्र) है और जिसका अन्तःकरण परमात्मा एवं धर्म में अटूट आस्था (आस्तिक्य) से पवित्र है, उसे **देवताओं की सदा पूजा** करनी चाहिए।

(२) इसके अतिरिक्त, वह **गुरुजनों** (माता-पिता, शिक्षक, आचार्य, बड़े-बुजुर्ग) का आदर और सेवा **देवताओं के समान** करे-अर्थात गुरु की पूजा देव-पूजा से कम नहीं होनी चाहिए। (३) और अन्त में, वह **सुहृदजनों** (मित्र, सज्जन, हितैषी) को **आत्मवत्** (स्वयं के समान) मानकर व्यवहार करे-उनके प्रति वैसा ही स्नेह, वैसा ही विश्वास और वैसा ही अधिकार दे, जैसा स्वयं के प्रति होता है। तीनों-देव, गुरु, मित्र-व्यक्ति के जीवन के तीन आधार स्तम्भ हैं। इनके प्रति यह भिन्न-भिन्न (देवतावत्, आत्मवत्) सम्मान-स्तर ही व्यक्ति को पूर्ण बनाता है।

दार्शनिक विवेचन

यह श्लोक **'आस्तिक्य'** को केवल धार्मिक-कर्मकाण्ड तक सीमित न रखकर, उसे **'समाज-दर्शन'** से जोड़ता है। 'आस्तिक्य' का अर्थ केवल ईश्वर में विश्वास नहीं, बल्कि 'ऋत' (सार्वभौमिक नियम) और 'धर्म' में विश्वास है। यह **'श्रद्धा-त्रय'** की अवधारणा है-देव (परात्पर), गुरु (ज्ञान-दाता), सुहृद (सह-यात्री)। उपनिषदों में 'मातृ-देवो भव, पितृ-देवो भव, आचार्य-देवो भव, अतिथि-देवो भव' (तैत्तिरीय) का उल्लेख है; कामन्दक उसमें 'सुहृद-आत्मवत्' जोड़ते हैं, जो **'आत्म-समता' (Self-Equality)** का अत्यन्त उत्कृष्ट दार्शनिक सिद्धान्त है। 'आत्मवत् सुहृज्जनम्' वस्तुतः **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की प्रारम्भिक सीढ़ी है-जो मित्र को अपने समान देखता है, वह धीरे-धीरे सबको अपना बना लेता है। गुरु की तुलना देव से करना भारतीय **'ज्ञान-मीमांसा'** का केन्द्र है, क्योंकि गुरु ही ब्रह्म-ज्ञान का मुख्य द्वार है। 'शुचि' और 'पूतात्मा' योग-साधना के 'शौच' (नियम) और 'श्रद्धा' को दर्शाते हैं-जिससे बुद्धि की 'तैजसी' अवस्था प्राप्त होती है।

आधुनिक संदर्भ

आज के तीव्र-गति और अलगाव (Isolation) के युग में, **'गुरु'** और **'सुहृद'** का महत्व कम होता जा रहा है-इस श्लोक के अनुसार, यही हमारी आध्यात्मिक विफलता है। (१) **देव-पूजा** आज के संदर्भ में नैतिक-मूल्यों और प्रकृति के प्रति सम्मान है; जलवायु परिवर्तन के युग में प्रकृति-पूजा (वृक्ष, जल, पृथ्वी) ही आधुनिक 'देव-पूजा' है। (२) **गुरुजन**-आज के कार्यक्षेत्र में 'मेंटर' (Mentor) और अभिभावकों की भूमिका को देवतुल्य मानना सीख, अनुभव और संस्कृति की रक्षा करता है। शिक्षा के व्यावसायीकरण में गुरु का वह स्थान खो गया है; यह श्लोक **'मेंटरशिप प्रोग्राम्स'** और **'गुरु-शिष्य परम्परा'** को पुनर्जीवित करने की प्रेरणा देता है। (३) **सुहृद (सहकर्मी/मित्र)** को 'आत्मवत्' मानना-आधुनिक कॉर्पोरेट जगत में **'टीम-वर्क' (Teamwork)**, **'इम्पैथी' (Empathy)** और **'इन्क्लूसिव लीडरशिप'** की जो माँग है, वह इसी दर्शन की व्यावहारिक अभिव्यक्ति है। यदि हम अपने सहकर्मियों को प्रतिद्वन्द्वी न मानकर अपना विस्तार (आत्मवत्) मानें, तो कार्य-स्थल का तनाव (Stress) स्वतः कम हो जाता है। अतः यह श्लोक **'आध्यात्मिक सामाजिकता' (Spiritual Sociality)** का उत्कृष्ट मॉडल प्रस्तुत करता है, जहाँ मन्दिर, गुरु-आश्रम और मित्र-मण्डली तीनों ही आत्म-निर्माण के समान साधन हैं।

प्रणिपातेन हि गुरून् सतोऽनूचानचेष्टितैः ।

कुर्वीताभिमुखान् भूत्यै देवान् सुकृतकर्मणा ॥३२॥

IAST

praṇipātena hi gurūn sato'nūcānaceṣṭitaiḥ |

kurvītābhimukhān bhūtyai devān sukṛtakarmaṇā ||32||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
प्रणिपातेन	प्रणाम / दण्डवत् नमस्कार / पूर्ण विनय द्वारा
हि	निश्चय ही
गुरून्	गुरुजनों / बड़ों / आचार्यों को
सतः	सज्जनों / सत्पुरुषों / गुणी विद्वानों को
अनूचानचेष्टितैः	अनूचान (शास्त्र-वेद-पारंगत विद्वान) के समान आचरण / यथाशास्त्र व्यवहार द्वारा
कुर्वीत	करे / बनाए
अभिमुखान्	अनुकूल / प्रसन्न / अपनी ओर आकर्षित
भूत्यै	(अपनी) उन्नति / समृद्धि / कल्याण के लिए
देवान्	देवताओं को
सुकृतकर्मणा	शुभ / पुण्य / विधि-विधानपूर्ण कर्मों (यज्ञ, दान, पूजा) द्वारा

भावार्थ

इस श्लोक में कामन्दक शासक को **तीनों प्रमुख शक्तियों-गुरुजन, सज्जन और देवता-को संतुष्ट करने** की सूक्ष्म विधि बताते हैं। गुरुओं (माता-पिता, आचार्य, वृद्ध) को केवल बौद्धिक या भौतिक सेवा से नहीं, बल्कि **शारीरिक विनय (प्रणिपात)** से प्रसन्न करना चाहिए-यह उनके प्रति आत्म-समर्पण का भाव है। सज्जन (गुणी और विद्वान लोग) केवल चापलूसी या धन से नहीं, बल्कि **'अनूचान-चेष्टा'** (शास्त्रोक्त सद्व्यवहार, संयम और विद्वतापूर्ण चरित्र) से प्रभावित होते हैं; अर्थात उनके साथ रहकर उन्हीं के सदृश आचरण करना। देवताओं को राजा **'सुकृत कर्म'** (यज्ञ, हवन, नियमित पूजा, दान) द्वारा प्रसन्न करे-यह आध्यात्मिक सुरक्षा है। इन तीनों को अनुकूल करना राजा की **'भूति' (ऐश्वर्य, राज्य-लक्ष्मी)** के लिए अनिवार्य है। इनमें से किसी एक भी वर्ग की उपेक्षा करने पर राज्य का पतन होता है। यह समग्रता (Holistic Governance) का प्राचीन सूत्र है।

दार्शनिक विवेचन

यह श्लोक **'त्रिवर्ग-साधना'** (गुरु-सत-देव) पर आधारित है। भारतीय दर्शन में 'गुरु' प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं; इनकी सेवा **'विद्या-प्राप्ति'** के लिए है। 'सत्' (सज्जन) का सम्मान **'सत्संग'** का दार्शनिक स्तम्भ है-भगवद्गीता (३.२१) कहती है कि जो सज्जन जैसा करते हैं, सामान्य मनुष्य वैसा ही अनुसरण करता है; अतः राजा को सज्जनों के सदृश आचरण करना चाहिए। 'देव' (दैवी शक्तियाँ) के प्रति 'सुकृत-कर्म' **'कर्म-सिद्धान्त'** को राज-व्यवहार से जोड़ता है-राजा स्वयं प्रजा के पाप-पुण्य का भागी होता है। जिस प्रकार मीमांसा दर्शन में 'यज्ञ' ब्रह्माण्ड-व्यवस्था को नियंत्रित करता है, वैसे ही राजा के यज्ञ समाज में ऋत-धर्म (Cosmic Order) स्थापित करते हैं। गुरु में 'श्रद्धा', सत् में 'सादृश्य', और देव में 'विधि-निष्ठा'-ये तीनों मिलकर एक आदर्श **'राजर्षि' (राजा-ऋषि)** का निर्माण करते हैं, जो लौकिक और अलौकिक दोनों स्तरों पर संतुलित होता है।

आधुनिक संदर्भ

आज के संदर्भ में 'गुरु' का विस्तार **'मार्गदर्शकों' (Mentors, वरिष्ठ अधिकारियों)** तक है। किसी संस्था में नव-प्रवेशी को विनम्रता (प्रणिपात) की आवश्यकता होती है, न कि केवल तकनीकी ज्ञान की। 'सज्जन' आज के **'पेशेवर विशेषज्ञ' (Subject Matter Experts)** हैं; उन्हें प्रभावित करने के लिए केवल पैसे नहीं, बल्कि उन्हीं की भाषा, अनुशासन और कार्य-संस्कृति (अनूचान-चेष्टा) अपनानी पड़ती है। 'देव' का आधुनिक रूप **'ब्रांड इमेज, कॉरपोरेट मूल्य और पर्यावरण-चेतना'** हो सकता है-जैसे 'सतत विकास' (Sustainable Development) करना सरकारों के लिए एक प्रकार का 'सुकृत कर्म' है, जो अंतर्राष्ट्रीय समर्थन (भूति) दिलाता है। इसके अलावा, किसी राष्ट्र का **'सॉफ्ट पॉवर' (संस्कृति, योग, अध्यात्म)** उसे वैश्विक मंच पर अभिमुख (अनुकूल) बनाता है। इस प्रकार, यह श्लोक आधुनिक स्टेकहोल्डर सिद्धान्त (Shareholder vs Stakeholder Theory) का प्राचीन रूप है-राजा/CEO को सभी हितधारकों (पूर्वज/गुरु, विशेषज्ञ/सत्, और नैतिक मूल्य/देव) को संतुष्ट रखना होगा।

सद्भावेन हरेन् मित्रं सम्भ्रमेण च बान्धवान् ।

स्त्रीभृत्यान् प्रेमदानाभ्यां दाक्षिण्येनेतराञ् जनान् ॥३३॥

IAST

sadbhāvena haren mitraṃ sambhrameṇa ca bāndhavān |
strībhṛtyān premadānābhyāṃ dākṣiṇyenetarān janān ||33||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
सद्भावेन	सद्भाव / निष्कपट प्रेम / हार्दिक स्नेह द्वारा
हरेत्	मोह ले / जीत ले / आकर्षित करे
मित्रम्	मित्र / समान-रुचि के सहयोगी

सम्भ्रमेण	आदर-सत्कार / उपचार / घबराहट-सहित सेवा (शिष्टाचार)
च	और
बान्धवान्	बन्धु-बान्धव / सगे-सम्बन्धी
स्त्रीभृत्यान्	स्त्रियाँ (पत्नी/रानी) और भृत्य (सेवक-कर्मचारी)
प्रेमदानाभ्याम्	प्रेम (स्नेह) और दान (उपहार/वेतन-सुविधा) द्वारा
दाक्षिण्येन	सौजन्य / नम्रता / कुशलता / विनय
इतरान्	अन्य / शेष
जनान्	लोगों / प्रजा-सामान्य को

भावार्थ

कामन्दक राज-व्यवहार की यह अत्यन्त व्यावहारिक सारणी (Matrix) देते हैं कि समाज के प्रत्येक वर्ग को अलग तरीके से संतुष्ट किया जाना चाहिए। **मित्रों** (समान क्षमता वाले सहयोगी राजा या मंत्री) को 'सद्भाव' से जीतना चाहिए-उनसे धोखा, ईर्ष्या या दिखावा न करें, वरन् हृदय से जुड़ें। **बान्धवों** (सगे सम्बन्धी, वंशज) को आदर-सत्कार (सम्भ्रम) की आवश्यकता होती है-उन्हें सम्मानित महसूस कराना चाहिए। **स्त्री और भृत्य** (आश्रित एवं नौकर-चाकर) दो चीज़ों से वश में होते हैं-प्रेम (स्नेहिल व्यवहार) और दान (वेतन, भोजन, उपहार); इन दोनों में से किसी की भी कमी वफादारी तोड़ देती है। **शेष सामान्य जनता** को केवल 'दाक्षिण्य' (सौजन्य, मृदुता और निष्पक्षता) से आकर्षित किया जा सकता है-उन्हें आडम्बर या विशेष उपहार न देकर, केवल सभ्य एवं विनम्र व्यवहार ही पर्याप्त है। यह **'वर्ग-विशिष्ट प्रबंधन'** का अद्भुत मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है।

दार्शनिक विवेचन

यह श्लोक **'अधिकार-भेद' (Hierarchical Differentiation)** और **'गुणानुरूप व्यवहार'** का दार्शनिक सूत्र है। यहाँ किसी को भी एकसमान व्यवहार करने का मूर्खतापूर्ण आदर्श (Blanket Equality) नहीं दिया, बल्कि वस्तु-स्थिति (Deservingness) के अनुसार व्यवहार-भेद किया गया है। मित्र के साथ 'सद्भाव' आत्मीयता का रिश्ता है-यह अरस्तू के 'निकोमेखियन एथिक्स' में 'वर्चु फ्रेंडशिप' के समान है। बान्धवों के प्रति 'सम्भ्रम' **'सामाजिक मान्यता' (Social Recognition)** की आवश्यकता है-यह हेगेल की 'मान्यता की लड़ाई' का शांतिपूर्ण समाधान है। स्त्री-भृत्यों के लिए 'प्रेम-दान' **'सुरक्षा एवं प्रेरणा सिद्धान्त'** है-मास्लो के पिरामिड के दो आधार स्तम्भ (Physiological Needs + Love/Belonging)। सामान्य जन के लिए 'दाक्षिण्य' **'न्यूनतम अहंकार' (Ego-less Governance)** है-क्योंकि जनता से दूरी बनाकर शासन करना असम्भव है। समग्र रूप से, यह दर्शन **'परिस्थितिवाद' (Contextualism)** है-जिस व्यक्ति का जो स्वभाव और आवश्यकता है, उसके अनुरूप नीति बदलनी चाहिए; यही सफल शासन की कुंजी है।

आधुनिक संदर्भ

आज के कारपोरेट और राजनैतिक संदर्भ में यह श्लोक **'स्टेकहोल्डर मैपिंग' (Stakeholder Mapping)** और **'सिचुएशनल लीडरशिप'** का आदर्श उदाहरण है। किसी संगठन में आपके **सह-संस्थापक (Co-founders)** 'मित्र' हैं-उनसे सद्भाव और पारदर्शिता चाहिए; **परिवार-स्वामित्व (Family Board)** वाले 'बान्धव' हैं-उन्हें केवल औपचारिक सम्मान और पद-गरिमा चाहिए; **कर्मचारी** (भृत्य) और **महिला-कार्यबल** को स्नेहिल वातावरण और उचित मुआवज़ा (डबल-बॉटम लाइन) चाहिए; और **ग्राहक/आम जनता** (इतर जन) को केवल बढ़िया ग्राहक-सेवा (दाक्षिण्य) से संतुष्ट किया जा सकता है, उन्हें कंपनी के आंतरिक रहस्यों या विशेष उपहारों की आवश्यकता नहीं। राजनीति में, **मित्र-राष्ट्रों** (जैसे भारत-अमेरिका) को सद्भाव चाहिए, **प्रवासी अपने** (बान्धव) को सम्मान, **सेवा-क्षेत्र के कर्मी** को वेतन-सुरक्षा, और **तटस्थ देशों** को केवल कूटनीतिक सौजन्य। यही 'स्मार्ट डिप्लोमेसी' और 'वैविध्यपूर्ण मानव-संसाधन प्रबंधन' का मूल मंत्र है।

अनिन्दा परकृत्येषु स्वधर्मपरिपालनम् ।

कृपणेषु दयालुत्वं सर्वत्र मधुरा गिरः ॥३४॥

IAST

anindā parakṛtyeṣu svadharmaparipālanam |

kṛpaṇeṣu dayālutvaṃ sarvatra madhurā giraḥ ||34||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
अनिन्दा	निन्दा न करना / दूसरों के कार्यों में दोष न निकालना
परकृत्येषु	दूसरों (दूसरे राज्य/व्यक्ति) के किए गए कार्यों में
स्वधर्मपरिपालनम्	अपने धर्म (कर्तव्य) का पालन करना
कृपणेषु	दीन / निर्धन / असहाय / कमज़ोर लोगों के प्रति
दयालुत्वम्	दया / करुणा / सहानुभूति
सर्वत्र	सभी जगह / हर परिस्थिति में
मधुरा	मधुर / कोमल / प्रिय
गिरः	वाणी / बातें

भावार्थ

इस श्लोक में कामन्दक एक आदर्श शासक के **चार मूलभूत आचार-लक्षण** बताते हैं। पहला-**अनिन्दा** (परकृत्येषु): दूसरे राज्यों, मंत्रियों या प्रजाजनों के कार्यों में सदोष दृष्टि न डालें, ईर्ष्या-वश उनकी बुराई न करें। दूसरा-**स्वधर्म-परिपालन**: राजा स्वयं अपने कर्तव्यों (प्रजा-रक्षा, न्याय, सैन्य-प्रबंध) का अक्षुण्ण पालन करे। तीसरा-**कृपणेषु दयालुत्वं**: कमज़ोर, रोगी, निर्धन, अनाथ, या अशिक्षित प्रजा के प्रति

पूर्ण करुणा रखे। चौथा-**सर्वत्र मधुरा गिरः**: चाहे परिस्थिति कितनी भी कठिन हो, अपनी वाणी को कभी कर्कश या उग्र न होने दे, सदैव मधुरता बरते। ये चार गुण एक साथ राजा को न केवल प्रिय बनाते हैं, बल्कि उसके राज्य को हिंसा, विद्रोह और आतंक से बचाते हैं। यहाँ 'स्वधर्म' का अर्थ केवल धार्मिक कर्म नहीं, बल्कि **'राज-धर्म'** (संविधान और नीति-नियम) है।

दार्शनिक विवेचन

यह श्लोक **'धर्म-निष्ठा'** और **'सहानुभूति'** का अद्वितीय सम्मिलन है। 'अनिन्दा' **'अद्वेष' (द्वेष-रहितता)** का दार्शनिक रूप है-भगवद्गीता (१२.१३) में 'अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्' कहकर इसी गुण को मोक्ष-साधन बताया गया है। 'स्वधर्म-परिपालन' **'कर्म-योग'** है-शंकराचार्य ने 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' कहकर कर्तव्य-त्याग से मृत्यु को भी श्रेष्ठ बताया; यहाँ राजा के लिए यह और भी अनिवार्य है। 'कृपणेषु दया' **'जैन-दर्शन'** एवं **'बौद्ध-करुणा'** (करुणा) का राजनीतिक रूपान्तरण है-करुणा को मात्र एक गुण नहीं, बल्कि शासन का आधार स्तम्भ माना गया है। 'सर्वत्र मधुरा गिरः' पुनः **'वाक्-संयम'** की ओर लौटती है; यह **'मौन-सत्य'** का विकल्प नहीं, बल्कि 'प्रिय-हित' वचन का संकेत है। कामन्दक यहाँ उपनिषदों के 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्' को राज-नीति में ढालते हैं। कुल मिलाकर, ये चार सूत्र **'सत्ता के सौम्यीकरण' (Humanization of Power)** का दार्शनिक आधार हैं-शासन यंत्रवत् न होकर जैविक एवं मानवीय हो।

आधुनिक संदर्भ

आज के समय में ये चार गुण किसी भी नेता, प्रशासक, या कॉर्पोरेट सीईओ के लिए **'पीआर और गवर्नेंस मैनुअल'** समान हैं। 'अनिन्दा'-प्रतिस्पर्धी कंपनियों या विरोधी राजनेताओं की निंदा करने की बजाय यदि नेता अपनी नीतियों पर ध्यान दे, तो उसकी छवि उत्तम बनती है (जैसे न्यूज़ीलैंड की PM ने कभी ट्रंप की निंदा नहीं की, पर अपना काम किया)। 'स्वधर्म-परिपालन'-आज के संदर्भ में **'व्यावसायिक नैतिकता' (Professional Ethics)** और **'शासन की जवाबदेही' (Accountability)** है। 'कृपणेषु दया'- **'CSR (Corporate Social Responsibility)', 'समावेशी विकास', 'वंचित वर्गों के लिए कल्याण योजनाएँ'** (जैसे मनरेगा, फूड बैंक)। 'सर्वत्र मधुरा गिरः'-यह **'मीडिया-प्रबंधन' (Media Management)** और **'कूटनीतिक वार्ता'** की आधारशिला है; बाइडन-पुतिन जैसी तनावपूर्ण वार्ताओं में भी दोनों पक्ष औपचारिक सौजन्य बनाए रखते हैं। सोशल मीडिया के युग में एक कठोर ट्वीट किसी ब्रांड की प्रतिष्ठा को दशकों के लिए ध्वस्त कर सकता है; अतः 'मधुर वाणी' आज केवल नीति नहीं, अपितु व्यावसायिक आवश्यकता (Business Necessity) है।

प्राणैर् अव्युपकारित्वं मित्रायाव्यभिचारिणे ।

गृहागते परिष्वङ्गः शक्त्या दानं सहिष्णुता ॥३५॥

IAST

prāṇair avyupakāritvaṃ mitrāyāvyabhicāriṇe |

gṛhāgate pariṣvaṅgaḥ śaktyā dānaṃ sahiṣṇutā ||35||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
प्राणैः	प्राणों (जीवन) से
अव्युपकारित्वम्	अ-व्य-उपकारित्वम् = बिना किसी स्वार्थ/प्रत्युपकार की इच्छा के (निःस्वार्थता)
मित्राय	मित्र के लिए
अव्यभिचारिणे	अ-व्यभिचारिणे = जो बिचलित न हो / अटल / अविचलित / वफादार हो (चारित्र्यवान् मित्र)
गृहागते	घर आए हुए (अतिथि/आगन्तुक) के प्रति
परिष्वङ्गः	आलिंगन / हार्दिक स्वागत / भुजाबन्दी
शक्त्या	(अपनी) सामर्थ्य/क्षमता के अनुसार
दानम्	दान / उपहार / सहायता
सहिष्णुता	सहनशीलता / धैर्य / क्षमा / सहृदयता

भावार्थ

इस श्लोक में कामन्दक उस **'सज्जन/शासक'** के अन्य गुणों की गणना करते हैं जो पिछले श्लोकों में वर्णित मधुर वाणी और दयालुता से परे हैं। पहला-**प्राणैः अव्युपकारित्वम्**: अपने अटल, सच्चे मित्र (अव्यभिचारी) के लिए शासक को अपने प्राणों का भी मोह न करना चाहिए, और वह भी बिना किसी बदले की आशा के (निःस्वार्थ समर्पण)। दूसरा-**गृहागते परिष्वङ्गः**: जो कोई भी बिना पूर्व-सूचना के आश्रय या शरण में आए (अतिथि, शरणागत, संकटग्रस्त), उसे भुजाएँ फैलाकर (परिष्वङ्ग = आलिंगन) स्नेह और सुरक्षा दे। तीसरा-**शक्त्या दानम्**: अपनी आर्थिक एवं भौतिक क्षमता के अनुसार उदारतापूर्वक दान/सहायता करे। चौथा-**सहिष्णुता**: शासक अपने पर हुए अपमान, आलोचना या अप्रियता को सहन करे, क्षुद्र प्रतिशोध न ले। ये चारों गुण मिलकर एक ऐसे **'लोकप्रिय एवं धार्मिक राजा'** का निर्माण करते हैं, जो अत्याचारी न होकर पितातुल्य होता है।

दार्शनिक विवेचन

यह श्लोक **'निःस्वार्थ मैत्री'** और **'आतिथ्य-धर्म'** का गहन दार्शनिक उत्कर्ष है। 'प्राणैः...अव्युपकारित्वम्' **'परोपकार-धर्म'** की चरम सीमा है-यहाँ 'अव्यभिचारी' मित्र वह है जो विपत्ति में न छोड़े (अकृतज्ञ न हो); ऐसे मित्र के लिए प्राण-त्याग वीर-रस और करुणा-रस का अद्भुत संगम है। 'गृहागते परिष्वङ्गः' **'अतिथि देवो भव'** की संहिता है, जो श्रुति-स्मृति (तैत्तिरीय उपनिषद) में वर्णित है-यहाँ राज-महल की बाध्यता से ऊपर उठकर 'मानव-धर्म' को प्राथमिकता दी गई है। 'शक्त्या दानम्' **'अर्थ-संग्रह'** का सीमा-बोध है-महाभारत में दान को 'शक्ति' (सामर्थ्य) के अनुसार करने का विधान है; अतिरिक्त दान राजकोष को नष्ट कर देता है, किन्तु दान न करना कृपणता है। 'सहिष्णुता' **'क्षमा-वीर्य'** का दर्शन है-जैसे महात्मा गाँधी ने 'क्षमा वीरों का भूषण' कहा है; यह अहिंसा की

आत्मा है। कामन्दक यहाँ **'राज-धर्म' को 'योग-धर्म'** से जोड़ते हैं-आत्म-संयम (सहिष्णुता), त्याग (दान), और भक्ति (प्राणार्पण) एक साथ।

आधुनिक संदर्भ

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में ये चार गुण **'मानवीय नेतृत्व' (Humane Leadership)** और **'कूटनीतिक आतिथ्य' (Diplomatic Hospitality)** की रीढ़ हैं। 'प्राणैः अव्युपकारित्वम्'-युद्ध या संकट के समय सहयोगी देश (अव्यभिचारी मित्र) के लिए सेनाएँ भेजना या सहायता करना, जैसे भारत ने भूटान या नेपाल के लिए समय-समय पर किया है, बिना तत्काल प्रतिफल की आशा के। 'गृहागते परिष्वङ्गः'-**'शरणार्थी नीति' (Refugee Policy)** का उत्कृष्ट पक्ष है; जर्मनी ने सीरियाई शरणार्थियों के प्रति जो दृष्टिकोण अपनाया, वह इसी का आधुनिक रूप है। 'शक्त्या दानम्'-आज **'अंतर्राष्ट्रीय सहायता' (Foreign Aid)** और **'COVID-19 वैक्सीन मैत्री'** इसी पर आधारित है-राष्ट्र अपनी GDP के अनुसार दान देता है। 'सहिष्णुता'- **'सोशल मीडिया ट्रोलिंग'** के इस दौर में सार्वजनिक व्यक्तियों को अथाह आलोचना सहन करनी पड़ती है; जो नेता त्वरित प्रतिक्रिया न देकर धैर्य रखते हैं (जैसे अर्डर्न या सिंगापुर के ली कुआन यू ने दिखाया), वे अधिक सम्मानित होते हैं। कारपोरेट जगत में यह **'क्राइसिस मैनेजमेंट'** और **'स्टेकहोल्डर टॉलरेंस'** है। ये गुण किसी राज्य को केवल विकासशील नहीं, बल्कि **'सॉफ्ट पॉवर सुपरपॉवर'** भी बनाते हैं।

स्वसमृद्धिष्वनुत्सेकः परवृद्धिष्वमत्सरः ।

नान्योपतापि वचनं मौनव्रतचरिष्णुता ॥३६॥

IAST

svasamṛddhiṣv anutsekaḥ paravṛddhiṣv amatsaraḥ |

nānyopatāpi vacanaṃ maunavratacariṣṇutā ||36||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
स्व-समृद्धिषु	अपनी समृद्धि / ऐश्वर्य / सफलताओं में
अनुत्सेकः	गर्व / अहंकार / उन्माद का न होना (उत्सेक-रहित)
पर-वृद्धिषु	दूसरों की वृद्धि / उन्नति / लाभ में
अमत्सरः	ईर्ष्या / द्वेष / जलन का न होना (मत्सर-रहित)
न-अन्य-उपतापि	दूसरों (अन्य) को पीड़ा / कष्ट (उपताप) न देने वाली
वचनम्	वाणी / बोली / वार्तालाप

मौनव्रत-चरिष्णुता	मौन-व्रत का पालन करने की प्रवृत्ति / अनावश्यक वाणी से विरत रहने की आदत (चरिष्णुता = आचरण करने की प्रवृत्ति)

भावार्थ

इस श्लोक में एक महापुरुष (राजा, नेता, या विद्वान) के चार आधारभूत आचार-सूत्र दिए गए हैं।

प्रथम, जब वह स्वयं धन, मान, पद या विद्या से सम्पन्न हो, तो उसे **'अनुत्सेक'** (गर्व-शून्यता) धारण करनी चाहिए – अर्थात सफलता उसे अंधा न करे। द्वितीय, जब वह दूसरों को उन्नतिशील देखे, तो उसके हृदय में **'अमत्सर'** (ईर्ष्या-शून्यता) हो – वह दूसरे के सौभाग्य का आनन्द ले सके। तृतीय, उसकी वाणी **'अन्योपतापी'** न हो – अर्थात किसी प्राणी के मन, शरीर या आत्मसम्मान को चोट न पहुँचाए। चतुर्थ, उसमें **'मौनव्रत-चरिष्णुता'** हो – अर्थात वह अनावश्यक बातें, गप-शप, व्यर्थ के वाद-विवाद और कटुता से बचने के लिए मौन रहने की आदत विकसित करे।

यहाँ 'मौन' का अर्थ केवल चुप्पी नहीं, बल्कि **'संयत वाणी'** है – बोलना हो तो केवल सार्थक, मधुर और हितकर। ये चारों गुण किसी बाह्य दिखावे के नहीं, बल्कि आत्म-संयम (Self-Restraint) के सूचक हैं। जो इन्हें धारण करता है, वही सच्चा 'महात्मा' बन पाता है; अन्यथा धन-वैभव तो बहुतों को मिल जाता है, किन्तु इन गुणों के बिना वे उसके सुख या प्रतिष्ठा का कारण नहीं बनते।

दार्शनिक विवेचन

दार्शनिक दृष्टि से यह श्लोक **'अहंकार' (Ego) और 'ईर्ष्या' (Envy)** को आत्म-बोध के सबसे बड़े शत्रु मानता है। गीता (अध्याय १६) में 'दैवी सम्पदा' में 'अमानित्वम्' (अभिमान-रहित) की गणना की गई है – यही यहाँ 'अनुत्सेक' है। 'परवृद्धिष्वमत्सरः' मानव-मन के 'तमस' (अज्ञान) गुण का निषेध करता है; ईर्ष्या इसलिए होती है क्योंकि हम दूसरे को अपने से पृथक् और प्रतिद्वन्द्वी मानते हैं, जबकि अद्वैत-दृष्टि में सब आत्मा का विस्तार है।

'अन्योपतापि वचनम्' **'अहिंसा'** (Non-violence) के सूक्ष्मतम तन्तु को स्पर्श करता है – जहाँ कठोर वचन हिंसा का ही एक रूप है। 'मौनव्रत-चरिष्णुता' को पाश्चात्य दार्शनिक विट्गेन्स्टाइन के 'वाक्य-सीमा' सिद्धान्त (जहाँ वह कहते हैं – 'जिसके बारे में न बोल सकें, उसके बारे में मौन रहें') से भी तुलना की जा सकती है। किन्तु भारतीय दर्शन में मौन केवल अज्ञात का सम्मान नहीं, वरन् **'तप' (आत्म-शुद्धि)** का साधन है – जैसे महर्षि मौन-व्रत द्वारा वाक्-शक्ति को अन्दर की ओर मोड़ते हैं। इस प्रकार, ये गुण 'राज-ऋषि' की 'स्थितप्रज्ञता' को परिभाषित करते हैं – बाहरी उतार-चढ़ाव (स्व-समृद्धि या पर-वृद्धि) उसके मन को विचलित नहीं करते।

आधुनिक संदर्भ

आज के अत्यधिक प्रतिस्पर्धात्मक और सोशल-मीडिया-संचालित विश्व में ये चारों सूत्र अत्यन्त प्रासंगिक हैं। 'स्वसमृद्धिष्वनुत्सेकः' आज के **'हंबल लीडरशिप' (Humble Leadership)** का आधार है – जो CEOs अपनी सफलता पर फूले नहीं समाते और टीम को श्रेय देते हैं, वे अधिक प्रभावी होते हैं (जैसे संताजु नारायण राव या रतन टाटा)।

'परवृद्धिष्वमत्सरः' **'सोशल मीडिया के नकारात्मक प्रभाव'** का प्रतिकार है – आज लोग दूसरों की छुट्टियाँ, पदोन्नति या खुशियाँ देखकर 'FOMO' (Fear Of Missing Out) और ईर्ष्या से ग्रस्त हो जाते हैं; यह श्लोक सिखाता है कि दूसरे के उत्थान में आनन्द लेना ही मानसिक स्वास्थ्य की कुंजी है।

'नान्योपतापि वचनम्' **'कार्यस्थल संवाद' (Workplace Communication)** और **'साइबर बुलिंग'** के खिलाफ़ सबसे बड़ा हथियार है – आज के 'जेंटल' व्यवहार और 'Non-Violent Communication' (मार्शल रोसेनबर्ग) का सार यही है। 'मौनव्रत-चरिष्णुता' आज के **'डिजिटल डिटॉक्स'** और **'माइंडफुलनेस'** आन्दोलन से मेल खाती है – जहाँ लोग व्यर्थ के व्हाट्सएप, ट्वीट और गप-शप से बचकर मानसिक शांति पाते हैं। अतः ये गुण आधुनिक मनुष्य को संतुलित, सम्मानित और आन्तरिक रूप से शक्तिशाली बनाते हैं।

बन्धुभिर्बद्धसंयोगः सुजने चतुरश्रता ।

तच्चित्तानुविधायित्वमिति वृत्तं महात्मनाम् ॥३७॥

IAST

bandhubhir baddhasaṃyogaḥ sujane caturaśratā |

taccittānuvidhāyitvam iti vṛttaṃ mahātmanām ||37||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
बन्धुभिः	बन्धुओं / सम्बन्धियों / मित्रों / स्नेहियों के साथ
बद्ध-संयोगः	गाढ़ा / अटूट / स्थिर सम्बन्ध (बद्ध = बंधा हुआ, संयोग = मेल/जुड़ाव)
सुजने	सज्जन / अच्छे / सदाचारी मनुष्यों के साथ
चतुरश्रता	चतुरस्रता / सरलता / ईमानदारी / अकुटिलता / स्पष्टवादिता (शाब्दिक अर्थ: चारों कोनों में समान – एकरूपता)
तत्-चित्त-अनुविधायित्वम्	उन (सुजनों) के मन (चित्त) के अनुसार चलने की कला / तदनुकूल व्यवहार / सहानुभूतिपूर्ण अनुपालन
इति	इस प्रकार / यह
वृत्तम्	आचरण / स्वभाव / चरित्र / जीवन-पद्धति
महात्मनाम्	महात्माओं / उदारचेतन / श्रेष्ठ पुरुषों का

भावार्थ

इस श्लोक में महापुरुषों के **तीन सामाजिक-नैतिक लक्षण** बताए गए हैं, जो केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन से सम्बन्धित हैं।

प्रथम, महात्मा अपने **बन्धुओं (परिवार, मित्र, स्वजन) के साथ बद्धसंयोग** (अत्यंत गहरा, निष्ठावान और अटूट सम्बन्ध) रखता है – वह सुख-दुःख में उनका साथ नहीं छोड़ता; उसके सम्बन्ध 'लेन-देन' के नहीं, बल्कि 'कर्तव्य-निष्ठा' पर आधारित होते हैं। द्वितीय, **सुजन (सज्जन, विद्वान, सदाचारी मण्डली) के साथ** वह **'चतुरश्रता'** (सीधापन, एकरूपता, ईमानदारी) दिखाता है – अर्थात उसके विचार, वचन और कर्म में कोई टेढ़ापन (कुटिलता) नहीं होती; वह जैसा सोचता है, वैसा बोलता और करता है।

तृतीय, उसमें **'तच्चित्तानुविधायित्वम्'** गुण है – वह सुजनों के मनोभावों, आवश्यकताओं और भावनाओं को समझकर उनके अनुरूप अपना व्यवहार ढाल लेता है। किन्तु यह 'खुशामद' नहीं है; यह **'सम्मानपूर्ण अनुकूलन'** है – जैसे किसी वृद्ध, शोकाकुल या किसी विशेष अवस्था में व्यक्ति के साथ विशेष ढंग से बोलना। इन तीनों गुणों के संयोग को 'महात्माओं का वृत्त' (स्वभाव) कहा गया है। एक शब्द में, महात्मा **'लोक-हित'** में रहते हुए भी अपनी मौलिक ईमानदारी (चतुरश्रता) को कभी नहीं खोता।

दार्शनिक विवेचन

यह श्लोक **'अस्तित्ववादी नीतिशास्त्र' (Existential Ethics)** और **'सामाजिक बुद्धिमत्ता' (Social Intelligence)** का अद्भुत मिश्रण है। 'बद्धसंयोग' में 'बद्ध' शब्द गहन है – यह न केवल शारीरिक/व्यावहारिक सम्बन्ध, बल्कि **'ऋणानुबन्ध' (आध्यात्मिक ऋण)** को इंगित करता है। जैसे वेदों में 'ऋणत्रय' (देव-ऋण, पितृ-ऋण, ऋषि-ऋण) का विमोचन कर्तव्य है, वैसे ही बन्धुओं के प्रति निष्ठा आत्म-धर्म है।

'चतुरश्रता' (चौकोरपन) एक सुंदर रूपक है – जैसे चौकोर वस्तु लुढ़कती नहीं, स्थिर रहती है; वैसे ही महात्मा का चरित्र हर परिस्थिति में अडिग एवं स्पष्ट रहता है। यह **'सत्याग्रह'** की अवधारणा से जुड़ता है – कुटिलता से काम चलाना क्षुद्रता है।

सबसे विशेष 'तच्चित्तानुविधायित्वम्' है। यह पश्चिमी दर्शन की 'एम्पैथी' (Empathy) से कहीं अधिक गहरा है – क्योंकि यह केवल समझ नहीं, **'कर्म में अनुकूलन'** है। अरस्तु के 'फ्रोनेसिस' (व्यावहारिक ज्ञान) और कन्फ्यूशियस के 'शू' (दूसरे के लिए सहानुभूति-पूर्ण व्यवहार) से इसकी तुलना हो सकती है। परन्तु कामन्दक की विशेषता यह है कि वे इस अनुकूलन को 'चतुरश्रता' (सत्यनिष्ठा) के साथ जोड़ते हैं – अर्थात अनुकूलन का अर्थ आत्म-त्याग या असत्य नहीं, बल्कि **'धर्म-मर्यादा'** में रहते हुए दूसरे के मन का सम्मान करना है।

आधुनिक संदर्भ

आज के उपभोक्तावादी और अलगाववादी (Individualistic) युग में पारिवारिक एवं सामाजिक सम्बन्ध कमज़ोर पड़ते जा रहे हैं। 'बन्धुभिर्बद्धसंयोगः' वर्तमान को **'रिश्तों की नाजुकता'** की याद दिलाता है – केवल सोशल मीडिया पर 'फ्रेंड्स' बना लेना पर्याप्त नहीं; वास्तविक जीवन में संकट के समय साथ देना ही महात्मता है। मनोविज्ञान भी कहता है कि गहरे सामाजिक सम्बन्ध ही मानसिक स्वास्थ्य के मूल आधार हैं।

'सुजने चतुरश्रता' आज के **'कॉर्पोरेट कल्चर'** में सबसे बड़ा मूल्य है – पारदर्शिता (Transparency) और ईमानदारी (Integrity) ही किसी संगठन को दीर्घकालिक विश्वसनीयता देती है। जहाँ 'गोलमाल' और 'फेकनेस' बढ़ी है, वहाँ सीधापन (चतुरश्रता) एक दुर्लभ एवं पूजनीय गुण हो गया है।

'तच्चित्तानुविधायित्वम्' आज के **'ग्राहक-केन्द्रितता' (Customer Centricity), 'इमोशनल इंटेलिजेंस' (EQ) और 'यूजर एक्सपीरियंस (UX)'** का प्राचीन सूत्र है – बिना अपने नैतिक सिद्धान्तों को खोए दूसरे की भावना के अनुरूप व्यवहार करना ही सफल राजनीति, प्रबन्धन और नेतृत्व की कुंजी है। सारांशतः, ये तीन गुण आधुनिक नेताओं, अभिभावकों और शिक्षकों को **'विश्वसनीय, सहानुभूतिशील एवं अटल'** बनाते हैं, जो किसी भी समाज के आधार-स्तम्भ हैं।

सनातने वर्त्मनि साधु तिष्ठताम् ।

अयं हि पन्था गृहमेधिनां मतः ।

अनेन गच्छन् नियतं महात्मनाम् ।

इमं च लोकं परमं च विन्दति ॥३८॥

IAST

sanātane vartmani sādhu tiṣṭhatām |

ayaṃ hi panthā gṛhamedhināṃ mataḥ |

anena gacchan niyataṃ mahātmanām |

imaṃ ca lokaṃ paramaṃ ca vindati ||38||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
सनातने	शाश्वत / अनादि / प्राचीन परम्परा-युक्त
वर्त्मनि	मार्ग / नीति-पथ पर
साधु	उचित रूप से / कुशलतापूर्वक
तिष्ठताम्	स्थित रहने वालों / अनुसरण करने वालों के लिए
अयम्	यह (मार्ग)
हि	निश्चय ही
पन्थाः	पथ / रास्ता
गृहमेधिनाम्	गृहस्थों / परिवार-व्यवस्था चलाने वालों (राजा सहित) के लिए
मतः	उचित / स्वीकृत / मान्य
अनेन	इस (मार्ग) द्वारा

गच्छन्	चलता हुआ / आचरण करता हुआ
नियतम्	निश्चित रूप से
महात्मनाम्	महापुरुषों / उदारचेतना वालों के (सदृश)
इमम्	इस (भौतिक / सांसारिक)
च	और
लोकम्	लोक / संसार
परमम्	परम / पारलौकिक / मोक्ष-लोक
च	तथा
विन्दति	प्राप्त करता है

भावार्थ

कामन्दक कहते हैं कि जो शासक (या सामान्य मनुष्य) **सनातन (शाश्वत एवं वेद-सम्मत) धर्म-मार्ग** पर स्थिरता से खड़ा रहता है, वही वास्तविक सफलता प्राप्त करता है। यह पथ विशेष रूप से **'गृहमेधियों'** (गृहस्थ धर्म का पालन करने वाले राजाओं एवं प्रजापतियों) के लिए मान्य है-क्योंकि भारतीय राजनीति-शास्त्र में राजा को 'गृहपति' का विशाल रूप माना गया है। इस मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति केवल सांसारिक ऐश्वर्य (इमं लोकं) ही नहीं, अपितु पारलौकिक मोक्ष (परमं लोकं) को भी प्राप्त करता है। यह श्लोक **'धर्म-प्रधानता'** की पुष्टि करता है-व्यवहारिकता (अर्थ) और आध्यात्मिकता (मोक्ष) में कोई विरोध नहीं है; दोनों उसी सनातन मार्ग पर मिलते हैं, बशर्ते मार्ग त्याग, निष्कपटता और कर्तव्य-पालन से युक्त हो।

दार्शनिक विवेचन

यह श्लोक **'पुरुषार्थ-चतुष्टय'** (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के समन्वय का सूत्र है। 'गृहमेधी' शब्द अत्यंत गूढ़ है-यह केवल गृहस्थ न होकर **'यज्ञ-साधक'** है, क्योंकि 'मेध' का अर्थ यज्ञ है। राजा अपने राज्य-प्रबंधन-रूपी महायज्ञ को बिना किसी मोह-ममता के (सनातन वर्त्म) संपन्न करता है। वेदान्त में 'सनातन' वह सत्य है जो त्रिकाल (भूत, वर्तमान, भविष्य) में अबाधित रहता है। इस दृष्टि से राजा को **'महात्मा'** (उदारचित्त) होना चाहिए-जिसका अर्थ केवल दानी नहीं, बल्कि आत्मा की विशालता (सबका कल्याण-भाव) है। प्लेटो के 'फॉर्म ऑफ गुड' की तरह, यह मार्ग अनुभवजन्य (empirical) और अनुभवातीत (transcendental) दोनों है। कामन्दक नीति-सूत्रों में 'योग-क्षेम' (अर्जन और संरक्षण) का जो उल्लेख है, वह इसी एक सूत्र में समाहित है-कर्तव्य-पालन स्वर्ग सदृश है और पाप-त्याग मोक्ष-सदृश।

आधुनिक संदर्भ

आज के विश्व में तीव्र गति की भौतिक प्रगति (इमं लोकं) अक्सर नैतिक पतन (परमं लोकं की हानि) को जन्म दे रही है। पर्यावरण-विनाश, भ्रष्टाचार, और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के अनियंत्रित दुरुपयोग के बीच, 'सनातन वर्त्म' का अर्थ हो सकता है-**'संधारणीय विकास' (Sustainable Development)**। संयुक्त

राष्ट्र के SDGs का लक्ष्य वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताएँ (इमं लोकं) पूरी करना और भविष्य की पीढ़ियों (परमं लोकं का विस्तृत अर्थ) को सुरक्षित रखना है। कॉर्पोरेट जगत में 'ESG' (Environmental, Social, Governance) मानदंड ठीक इसी 'सनातन' दृष्टिकोण को अपनाते हैं। जो संस्थान केवल तात्कालिक लाभ (इमं) के लिए दीर्घकालिक संस्कार-नाश (परमं) करते हैं, वे अंततः विलुप्त हो जाते हैं। यह श्लोक आधुनिक नेताओं को चेतावनी देता है कि **'धर्म-मार्ग' कोई पुरानी बात नहीं, अपितु वैश्विक अस्तित्व का आधारस्तम्भ है**।

इति पथि विनिवेशितात्मनो ।

रिपुरपि गच्छति साधु मित्रताम् ।

तदवनिपतिमत्सराद् ऋते ।

विनयगुणेन जगद्वशं नयेत् ॥३९॥

IAST

iti pathi viniveśitātmano |

ripur api gacchati sādhu mitratām |

tadavanipatimatsarād ṛte |

vinayaguṇena jagadvaśaṃ nayet ||39||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
इति	इस प्रकार / यों
पथि	उस (सनातन) मार्ग में
विनिवेशित	स्थिर / समर्पित किया हुआ
आत्मनः	जिसका मन / चित्त (आत्मा)
रिपुः	शत्रु
अपि	भी
गच्छति	प्राप्त होता है / बन जाता है
साधु	सरलता से / भली-भाँति
मित्रताम्	मित्रता / स्नेह-सम्बन्ध
तदा	तब / इसलिए

अवनिपति	राजा / पृथ्वीपति
मत्सरात्	मत्सर (ईर्ष्या, अहंकार, द्वेष) से
ऋते	रहित / छोड़कर / के अतिरिक्त
विनय	विनम्रता / नम्रता / शिष्टता
गुणेन	गुण / साधन द्वारा
जगत्	संसार / समस्त प्रजा
वशम्	वश / अधीन / नियंत्रण में
नयेत्	लाए / करे

भावार्थ

जिस शासक ने अपने चित्त को इस सनातन धर्म-पथ में पूर्णतया लगा दिया है, उसके समक्ष उसका घोर शत्रु भी स्वतः ही सुहृद् बन जाता है। इस मार्ग की सबसे बड़ी महिमा यह है कि इसमें विजय के लिए किसी आक्रामक दण्ड-शक्ति की आवश्यकता नहीं, बल्कि **अहंकार (मत्सर) को त्यागने** की आवश्यकता है। कामन्दक कहते हैं-हे राजन्! अपने भीतर के 'राज-गर्व' (अभिमान) को तिलांजलि देकर, केवल **'विनय' (नम्रता)** के उस गुण से तू सम्पूर्ण जगत को अपने वश में कर ले। 'मत्सर' केवल शत्रु से ईर्ष्या नहीं, बल्कि आत्म-प्रशंसा और दूसरों को तुच्छ समझने की प्रवृत्ति है। विनय वह अदृश्य शक्ति है जो बिना युद्ध के शत्रु के हृदय पर विजय प्राप्त कर लेती है। यहाँ राज-नीति का केंद्र **'बल' से 'शील'** की ओर स्थानान्तरित हो जाता है।

दार्शनिक विवेचन

यह श्लोक **'आत्म-विजय' (Self-Conquest)** को 'जगद्विजय' (World-Conquest) का आधार मानता है। 'विनय' गुण भारतीय दर्शन में 'विद्या' का प्रथम लक्षण है-'विनयम् विनयानाम्' (अर्थात नम्रता ही सच्चा आभूषण है)। चाणक्य ने कहा है-'विनयो हि शीलम्'। दार्शनिक दृष्टि से, 'मत्सर' Competitiveness/Jealousy) मन की संकीर्णता (अहंकार) है; यही व्यक्ति को दूसरों से अलग करती है, जबकि 'विनय' अद्वैत-भाव (सबमें आत्म-दर्शन) को जगाती है। पश्चिमी दर्शन में नीत्शे की 'विल-टू-पॉवर' के विपरीत, कामन्दक की 'विल-टू-ह्युमिलिटी' है-क्योंकि परम सत्य यह है कि जो झुकता है, वही ऊँचा उठता है (यह सुकराती विडम्बना भी है)। सुधारकों के अनुसार, 'राजर्षि' की यही सबसे बड़ी कसौटी है-अपने पद के घमंड से मुक्त होना। यह **'सांख्य-योग'** का मिश्रण है-कर्म करो, परन्तु अहंकार का त्याग करो (ईश्वर कृष्ण का गीता-उपदेश)।

आधुनिक संदर्भ

वैश्विक राजनीति और कॉर्पोरेट संस्कृति में 'हार्ड पावर' (सैन्य/आर्थिक दबाव) की अपेक्षा **'सॉफ्ट पावर' (Soft Power)** आज अधिक प्रभावी मानी जाती है-और 'विनय' उस सॉफ्ट पावर का मूल है। जो नेता अपनी बात सुनने वालों को सुनता है (सक्रिय श्रवण), जो गलती स्वीकार करता है (ह्यूमिलिटी), वह जनता

का 'वश' कर लेता है-जैसे किरण बेदी या सत्यमेव जयते में नरेंद्र मोदी/राहुल गांधी की विभिन्न छवियाँ इसी पर निर्भर हैं। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर, दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों की 'बाँस-नीति' (तूफान में झुकना, पर टूटना नहीं) इस 'विनय' का राजनीतिक रूप है। माइक्रोसॉफ्ट, गूगल, या टाटा जैसी बड़ी कंपनियाँ आज 'ह्यूम्बल लीडरशिप' (संस्थापकों की विनम्रता) को अपनी ब्रांड-वैल्यू बनाती हैं। यह श्लोक उन अहंकारी अरबपतियों (जैसे कुछ ट्विटर विवाद) के लिए आईना है-जिनका अहंकार उनके साम्राज्य को नष्ट कर देता है। आज का शासक 'मत्सर' (मीडिया के साथ टकराव, विपक्षी से ईर्ष्या) का परित्याग कर, शांतिपूर्ण संवाद (विनय) के माध्यम से ही वास्तविक शासन स्थापित करता है।

क्व च नरपतिगर्वः सङ्ग्रहः क्व प्रजानां ।

मधुरवचनयोगाल् लोकम् अभ्याददीत ।

मधुरवचनपाशैर् आयतालानितः सन् ।

पदम् अपि हि न लोकः संस्थितेर् भेदम् एति ॥४०॥

IAST

kva ca narapatigarvaḥ saṅgrahaḥ kva prajānām |

madhuravacanayogāl lokam abhyādadīta |

madhuravacanapāśair āyatalānitaḥ san |

padam api hi na lokaḥ saṃsthiter bhedam eti ||40||

शब्दार्थ

संस्कृत पद	हिन्दी अर्थ
क्व	कहाँ (तुलना / विरोधाभास दिखाने में)
च	और
नरपति	राजा का
गर्वः	अभिमान / दर्प
सङ्ग्रहः	संग्रह / प्रजा को एकत्रित करना
क्व	कहाँ (विरोधाभासी)
प्रजानाम्	प्रजा की (भक्ति / एकता)
मधुर	मधुर / सुमधुर
वचन	वाणी / बात

योगात्	प्रयोग / संयोग द्वारा
लोकम्	जन-समुदाय को
अभ्याददीत	आकर्षित करे / जीत ले
मधुर	मधुर
वचन	वचन / बोली
पाशैः	बन्धन-डोरियों / जाल से
आयत	दूर / विस्तृत
आलानितः	(आलान = खूँटे से बँधा) - आयत + आलानितः = बड़े खूँटे/सूत्र से बँधा हुआ (अर्थात दृढ़ता से बाँधा गया)
सन्	होता हुआ
पदम्	पैर / एक कदम / थोड़ा-सा भी
अपि	भी
हि	निश्चय ही
न	नहीं
लोकः	प्रजा / नागरिक
संस्थितेः	अपने स्थान / निष्ठा / कर्तव्य-पालन से
भेदम्	अलगाव / विचलन
एति	प्राप्त करता / जाता

भावार्थ (सारांश)

कामन्दक व्यंग्यात्मक शैली में कहते हैं-**राजा का अहंकार और प्रजा का संग्रह (एकत्रीकरण) दोनों का क्या मेल?** अर्थात अहंकार से प्रजा एकत्र नहीं होती, बल्कि बिखरती है। इसके विपरीत, जो शासक **मधुर वचन (सौम्य, स्नेहिल एवं आश्वासनात्मक भाषा)** का प्रयोग करता है, वही संसार को जीत सकता है। 'मधुर वचन' ही वास्तविक पाश (रस्सी) है-जब प्रजा इन वचन-रूपी रस्सियों से आयत (दूर-दूर तक) बंधी होती है, तो वह अपने धर्म-पालन (संस्थिति) से कभी विचलित नहीं होती; वह स्वेच्छा से राजा का अनुसरण करती है। 'पदम्' (एक कदम) भी न भटकना-इसका तात्पर्य है कि मधुर वाणी से बंधी प्रजा विद्रोह, कर-चोरी या अराजकता की ओर नहीं जाती। यह **'प्रेम-आधारित शासन' (Governance by Affection)** का सर्वोत्कृष्ट सूत्र है।

दार्शनिक विवेचन

यह श्लोक शब्द-शक्ति (Vāk) के **'अस्त्रत्व'** को 'पाशत्व' (बंधन) में बदल देता है। भारतीय व्याकरण-दर्शन (महर्षि पतंजलि) में 'शब्द-ब्रह्म' की अवधारणा है-शब्द सृष्टि का मूल कारण है। यहाँ 'मधुरवचन-पाश' संसार के सभी बल-प्रयोगों (दण्ड, सेना, कोष) को निरस्त कर देता है। दार्शनिक दृष्टि से यह **'आनन्द-मीमांसा'** (बौद्धिक/भावनात्मक सुख) है-प्रजा केवल भय से नहीं, अपितु प्रसन्नता से नियमों का पालन करती है। हॉब्स के 'लीवियाथन' में राज्य भय पर टिका है, जबकि कामन्दक का यह 'राज्य-स्नेह' (Affective State) रूसो के 'सामाजिक अनुबंध' (Social Contract) से मेल खाता है, जहाँ प्रजा स्वेच्छा से बंधती है। 'आयतालानितः' (दूर तक खूँटे से बँधा) का अर्थ है कि यह बंधन हिंसक नहीं, बल्कि नैतिक तन्तु-जाल (Moral Fibre) है-यही वैष्णव दर्शन का 'प्रेम-बंधन' है, जहाँ भक्त ईश्वर से भय से नहीं, प्रेम से बँधता है। यह कामन्दक की 'राजनीति' को 'धर्म-कला' में परिवर्तित कर देता है।

आधुनिक संदर्भ

आज की लोकतांत्रिक व्यवस्था जनमत (Public Opinion) पर टिकी है, और **'मीडिया एवं संचार' (Communication)** ही वह 'मधुरवचन-पाश' है। जो नेता या सरकार जनता से 'पितृ-तुल्य' एवं 'मधुर' भाषा में बात करती है (जैसे 'मेरे परिवार की तरह'), वही चुनाव जीतती है और कठोर नीतियाँ भी जनता सहजता से स्वीकार कर लेती है। उदाहरण-कोविड काल में जिन मुख्यमन्त्रियों ने सौम्य व उत्साहवर्धक अपीलें (जैसे 'आप ही के सहयोग से') कीं, वहाँ अनुपालन (Compliance) अधिक रहा; जिन्होंने आदेशात्मक (क्रूर) स्वर अपनाया, वहाँ विरोध हुआ।

ब्रांडिंग और मार्केटिंग में भी ग्राहक को 'मधुर वचन' (सकारात्मक विज्ञापन, कस्टमर केयर) से बाँधना ही 'ब्रांड-लॉयल्टी' (लोकः संस्थितेः भेदं न एति) कहलाता है। विकेन्द्रीकृत (Decentralized) संगठनों में 'कर्मचारी-अनुभव' (Employee Experience) पर बल इसी का परिणाम है। यह श्लोक आज के 'सोशल इंजीनियरिंग' और 'नेतृत्व-संचार' के लिए सबसे बड़ा वैज्ञानिक सूत्र है-कठोर आदेश (हुक्म) से शिथिलता आती है, जबकि मृदु वाणी (सुझाव) से 'संस्थिति' (स्थायित्व) आती है। अंततः, **अहंकार (गर्व) राजा को अकेला करता है; मधुरता (विनम्र वाणी) उसे सम्पूर्ण जनता की आत्मा बना देती है।**

तुलनात्मक अध्ययन – कामन्दक vs चाणक्य vs आधुनिक नेतृत्व

पहलू	कामन्दक (तृतीय सर्ग)	चाणक्य (अर्थशास्त्र)	आधुनिक नेतृत्व
मूल आधार	**आचार (व्यवहार)** एवं मधुर वाणी	**दण्ड (कानून)** एवं अर्थ	**EQ** एवं Trust

पहलू	कामन्दक (तृतीय सर्ग)	चाणक्य (अर्थशास्त्र)	आधुनिक नेतृत्व
प्रमुख गुण	**विनय** एवं करुणा	**आत्मसंयम** एवं दूरदर्शिता	**Empathy** एवं Active Listening
शत्रु नीति	**विनय** से शत्रु को मित्र बनाओ	**शाम-दाम-दण्ड-भेद**	**Soft Power** एवं Negotiation
प्रजा/टीम	'**मधुरवचन-पाश**' से जीतो	कर-व्यवस्था एवं अनुशासन	**Employee Engagement**
सर्वोच्च सूत्र	**सुशासन = विश्वास + करुणा**	**सुशासन = अर्थ + दण्ड**	**सुशासन = EQ + Transparency**

प्रवाह आरेख (Flow Diagram)

दण्ड (कठोर नियम - यमराज)
↓
करुणा (दीनों पर दया - प्रजापति)
↓
मधुर वाणी (संवाद-कौशल - मनोपहारिणी वाचा)
↓
विश्वास (प्रजा-राजा सम्बन्ध)
↓
विनय (अहंकार-त्याग - मत्सर-ऋते)
↓
सुशासन (स्थिर एवं समृद्ध राज्य)

निष्कर्ष (Conclusion)

इस प्रकार, **कामन्दकीय नीतिसार** का तृतीय सर्ग (आचारव्यवस्थापनप्रकरणम्) केवल राज-नीति का ग्रन्थ न होकर, **मानव-जीवन की समग्रता – धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष – को साधने वाला एक अनुपम दार्शनिक एवं व्यावहारिक मार्गदर्शक** है। इस सर्ग का निष्कर्ष तीन प्रमुख स्तम्भों पर आधारित है –

प्रथम, 'सत्ता एवं करुणा' का अद्वैत – कामन्दक ने सिद्ध किया कि राज्य-शक्ति का अन्तिम लक्ष्य दमन नहीं, अपितु **दीनों की रक्षा** है। श्लोक ७ (कृपणः पीड्यमानो हि मन्युना हन्ति पार्थिवम्) आधुनिक समय में भी उन शासकों के लिए चेतावनी है जो असमानता, अत्याचार या आर्थिक शोषण को अनदेखा करते हैं – क्योंकि अति-पीड़ित जन-आक्रोश (जन-विद्रोह) स्वयं सत्ता को नष्ट कर देता है।

द्वितीय, 'वाक्-शक्ति' की सर्वोच्चता – सर्ग का हृदय-भाग (श्लोक २१–३०) हमें सिखाता है कि **मधुर एवं संयमित वाणी** सबसे बड़ा राजनैतिक एवं सामाजिक पूँजी है। यह सर्ग घोषित करता है – 'मधुरवचन-पाशैः' (मधुर वचनों के बन्धन द्वारा) सम्पूर्ण प्रजा को बिना किसी हिंसा के अनुशासित एवं कर्तव्य-परायण रखा जा सकता है। यह आधुनिक संचार-युग के 'सॉफ्ट पावर', 'इमोशनल इंटेलिजेंस' एवं 'नॉन-वॉयलेंट कम्युनिकेशन' का प्राचीनतम एवं सर्वोत्तम सूत्र है।

तृतीय, 'विनय एवं सनातन-मार्ग' की विजय – श्लोक ३८–४० स्पष्ट करते हैं कि राजा का अहंकार (गर्व/मत्सर) प्रजा को बिखेरता है, जबकि **विनय** (नम्रता) शत्रु को भी मित्र बना देता है। कामन्दक कहते हैं कि जो शासक 'सनातन वर्त्म' (शाश्वत धर्म-पथ) पर स्थिर रहता है, वह इहलोक (भौतिक समृद्धि) एवं परलोक (आध्यात्मिक कल्याण) दोनों प्राप्त करता है – यही 'पुरुषार्थ-चतुष्टय' का समन्वय है।

अन्तिम निष्कर्ष – यह सर्ग हमें बताता है कि **सच्चा शासन भय पर नहीं, अपितु विश्वास, संवाद और सम्मान पर टिका होता है**। कामन्दक का यह सर्ग कालातीत है; आज जब दुनिया में 'ट्रोलिंग', 'हेट-स्पीच' और 'अहंकारी नेतृत्व' बढ़ रहा है, यह सर्ग हमें 'मधुर वाणी', 'दया' और 'विनय' के माध्यम से एक स्थिर, शान्तिपूर्ण एवं समृद्ध समाज-व्यवस्था का पाठ पढ़ाता है। यह सर्ग केवल राजाओं के लिए नहीं, अपितु **प्रत्येक शिक्षक, अभिभावक, प्रबन्धक एवं नागरिक के लिए जीवन-दर्शन है**, क्योंकि यह मानवीय सम्बन्धों के उन शाश्वत नियमों को रेखांकित करता है जो काल, देश और परिस्थिति से परे हैं।

संदर्भ सूची

1. **कामन्दकीय नीतिसार (मूल संस्कृत पाठ)** - आचार्य कामन्दक विरचित। तृतीय सर्ग *आचारव्यवस्थापनप्रकरणम्* के मूल संस्कृत पाठ, IAST लिप्यन्तरण, शब्दार्थ एवं भावार्थ के लिए।
2. **कौटिलीय अर्थशास्त्र** - आचार्य चाणक्य (विष्णुगुप्त) विरचित। शासन, दण्डनीति एवं नेतृत्व-सिद्धान्तों के तुलनात्मक अध्ययन हेतु।
3. **महाभारत (शान्तिपर्व)** - महर्षि वेदव्यास विरचित। राजधर्म, आपद्धर्म एवं आदर्श शासन-सिद्धान्तों के सन्दर्भ हेतु।
4. **मनुस्मृति** - महर्षि मनु विरचित। आचार, धर्म एवं शासन-सिद्धान्तों के आधारभूत सन्दर्भ हेतु।
5. **श्रीमद्भगवद्गीता** - महाभारत (भीष्मपर्व) का अंश। कर्मयोग, आत्मसंयम एवं नेतृत्व-सिद्धान्तों के दार्शनिक आधार हेतु।
6. **Kangle, R. P.** *The Kautiliya Arthashastra* (Parts I–III). University of Bombay, 1963–1965. (कौटिलीय अर्थशास्त्र का प्रामाणिक अंग्रेज़ी अनुवाद एवं अकादमिक विवेचन।)

7. **Olivelle, Patrick.** *King, Governance, and Dharma in Ancient India*. Oxford University Press, 2013.(प्राचीन भारतीय शासन, धर्म एवं राजकीय दायित्वों पर आधुनिक अकादमिक अध्ययन।)

8. **Olivelle, Patrick.** *The Law Code of Manu*. Oxford University Press, 2004. (मनुस्मृति का समीक्षित अंग्रेज़ी अनुवाद एवं विश्लेषण।)

9. **Debroy, Bibek.** *The Mahabharata* (Vols. 1–10). Penguin Books, 2010–2014. (महाभारत का आधुनिक अंग्रेज़ी अनुवाद; विशेषतः शान्तिपर्व।)

10. **Shamasastry, R.** *Kautilya's Arthashastra*. Government Press, Bangalore, 1915. (अर्थशास्त्र का प्रथम प्रसिद्ध अंग्रेज़ी अनुवाद।)

11. **Kane, P. V.** *History of Dharmashastra* (Vols. I–V). Bhandarkar Oriental Research Institute, 1930–1962. (धर्मशास्त्र, राजधर्म एवं भारतीय विधि-परम्परा का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन।)

12. **Indian Philosophy & Ethics.** *कामन्दकीय नीतिसार तृतीय सर्ग (आचारव्यवस्थापनप्रकरणम्): सम्पूर्ण हिन्दी व्याख्या, IAST, 40 श्लोक, नेतृत्व एवं सुशासन।* उपलब्ध: https://indianphilosophyethics.blogspot.com/2026/07/kamandakiya-nitisara-tritiya-sarga.html
अभिगमन तिथि: 23 जुलाई 2026।